प्रकाशक—
प्रकाश गृह
बनारस।

प्रथम संस्करण
दीपमालिका सन् १९५४ ई०।

मुद्रक
विश्वनाथ प्रसाद (भगतजी),
श्रीराम प्रेस, मुलानाला, बनारस।

समर्पण

अशोक जी,

जूतों की कहानियाँ तुम्हारे मुँह से सुनी थीं, तुम्हारी ही खोज सामग्री का उपयोग कर मैंने पुराने जूतों की कहानियाँ भी लिखी थीं।

इसलिए इस 'मखमली जूती' पर पूर्ण स्वत्वाधिकार तुम्हारा ही है। इस असाहित्यिक भेंट पर नाराज होंगे, ऐसी आशंका नहीं।

तुम्हारा ही,

मोहनलाल गुप्त

मुझे कुछ नहीं कहना है !

कहानियाँ मैंने लिखी भर हैं—वैसे हैं आपकी। मित्रों से सुनी सुनायी घटनाएँ, परिचितों के जाने-पहचाने चेहरे कहानी में उतर आये हैं। इसके लिए क्षमा याचना क्या करूँ ? कहानी लेखक को इतना अधिकार प्राप्त है।

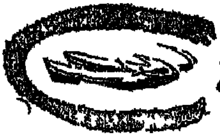
ये कहानियाँ हिंदी के प्रमुख पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ आकाशवाणी से प्रसारित हुई हैं। इन कहानियों के पुनर्प्रकाशन के समय पूर्व प्रकाशकों के प्रति आभार प्रदर्शन करता हूँ।

संग्रह की कहानियाँ नयी भी हैं और पुरानी भी। स्वयंवर १६३८ में लिखी गई तो 'मखमली जूतो' १६४६ में। कहानियाँ जैसी भी हैं, आपके सामने हैं। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू क्या बनूँ ? पाठक ही सबसे बड़े समीक्षक हैं। कहानियाँ आपको कैसी लगीं ?

रामप्रसाद भवन
चेतगंज, बनारस। }

मोहन लाल गुप्त

❋ विषय-सूची ❋



मखमली जूती

जीवन मे जिन्हें कभी जूती खाने का मौका नहीं मिला, वे सचमुच एक मधुर आनन्द से वञ्चित रह गये। आप कल्पना नहीं कर सकते कि जूती खाने में भी कभी-कभी आनन्द की अनुभूति होती है। जूतों की कल्पना से शायद आपकी खोपड़ी के बाल खड़े हो गये हैं—पर मैं जूतों की नहीं, मखमली जूती की बात कह रहा हूँ। चमरौधे और बूट की क्रूर कल्पना के साथ मखमली जूती की मधुर कल्पना का संयोग ठीक नहीं। जूती आजकल तो प्रणय की दूती बन गयी है। आधुनिक प्रेम का आरम्भ और अन्त इसीसे होता है।

मेरे लिए तो मखमली जूती एक मीठी यादगार है। मखमली जूती के नाम से दिल में एक मीठी गुदगुदी-सी पैदा हो जाती है और बरबस ही किन्हीं नंगी गुलाबी एँड़ियों की याद आ जाती है। वह भी एक गुलाबी संध्या थी, जब मेरी खोपड़ी के इतिहास में एक मखमली जूती

आकाश से टपकी थी, मैं अपने बंगले के लॉन में बैठा अखबार के 'मैट्रीमोनियल कालम' पर आँखों का इंजन दौड़ा रहा था कि लगा जैसे किसी ने खोपड़ी पर कसकर तमाचा मारा हो या सर पर कोई बम या पटाखा फूट पड़ा हो। अखबार के दफ्तर में कार्याधिक्य से थकी हुई मेरी पिलपिली खोपड़ी इस अप्रत्याशित आघात के लिए तैयार नहीं थी। खोपड़ी सहलाने के बाद मैंने देखा, गोद में एक मखमली जूती पड़ी है। वैसे ही जैसे किसी प्रेम का का सन्देश लिये गोद में कोई कबूतर आ टपका हो। मैंने हाथ में लेकर देखा—फूल-सी हल्की। किसी कोमलांगीके पैर की होगी- मैंने कल्पना की। मखमली जूती-काले मखमल पर जरी का काम। पहनने वाली गौरांग सुन्दरी होगी—मैंने अनुमान किया। जूती पसन्द आ गयी। मैंने रख ली।

पर यह आयी कहाँ से? आसमान की ओर सर उठाया—न कोई वायुयान था, न कोई चील या कौवा ही। यह अनुमान करना कि आकाश मार्ग से कोई अप्सरा उड़कर जा रही होगी—जरा असंगत-सा लगा। अगर मैं कहूँ भी तो शायद आप विश्वास न करें। दिमाग ने फिर छलांग मारी—बगल की चहारदीवारी के उस पार कुछ शोर-गुल सुनाई दे रहा था। हो न हो, यह मेरे खूबसूरत पड़ोसियों की शरारत हो। आपके कौतूहल को अधिक कुरेदने के पूर्व ही मैं आपको बता दूँ कि मेरे बंगले की चहारदीवारी के उस पार लड़कियों का कालेज और होस्टल है। दोनों के अहातों को एक ही दीवार अलग करती है। दीवार से सटा हुआ मेरे बंगले में एक विशाल इमली का पेड़ खड़ा है, जिसका मधुर फल चखने के लिए कभी-कभी लड़कियों के मुख में पानी आ जाता है। आम की फाँकों-सी आँखोंवाली लड़कियों को दीवार पर चढ़कर इमली तोड़ते तथा पेड़ पर ढेले मारते हुए मैंने देखा है। पर आज तक किसी लड़की के ढेले का शिकार मैं या मेरी खोपड़ी नहीं हुई। फिर जूती मारने की गुस्ताखी कोई लड़की कैसे कर सकती है—यह बात

मेरी समझ में नहीं आ रही थी। दिमाग उलझन में था—इतने में ही देखता हूँ कि लड़कियों का एक अच्छा खासा जत्था बंगले के अहाते के भीतर घुसा आ रहा है। दूसरी ओर से दीवार फाँदकर भी कुछ छोकरियाँ अन्दर आ गयीं। कैंची के दोनों फलों के बीच में और मेरी खोपड़ी अपने को अरक्षित अनुभव करने लगी। आते ही प्रश्न हुआ—

'जी आपने कहीं मेरी जूती देखी है ?

'क्या कहा जूती'

'जी हाँ, जूती।'

'आपकी जूती मैं क्यों देखने लगा ?'

'मेरा मतलब है, आपकी बगीची में आ गिरी है। मैं—हम लोग इमली तोड़ रही थीं।'

'तो आप जूती से इमली तोड़ती हैं ?'

'जी, आप तो पूरे मियाँ हैं! मियाँ।'

'और आप ? खट्टी इमली!'

'आप तो बड़े बातूनी मालूम होते हैं।'

'जी! बातें तो आप बनाती हैं।'

'मजाक छोड़िये। जूती देखी है या नहीं, यह बताइये।'

'मैंने तो नहीं देखी। बगीची आपकी है, देख लीजिये।'

१५ मिनट तक सारा बगीचा छान डालने के बाद वे सब फिर मेरे पास आयीं।

'जूती तो नहीं मिली।'

'तो मैं क्या करूँ ?'

'आपने छिपायी है।'

'आपका मतलब ?'

'आपने चुराई है।'

'तो मैं जूती चोर हूँ ?'

'चेहरे से तो ऐसे ही जान पड़ते हैं।'

'अच्छा, मान लीजिये मैं ही चोर हूँ। पर जूती है किसकी?'

'इससे आपको मतलब?'

'मैं उनका चेहरा देखना चाहता हूँ।'

'मगर जूती तो पैर में पहनी जाती है।'

'पैर भी देख लूँगा।'

मैंने देखा, नंगी एँड़ियो वाली लड़की जो मुझ से बड़ी बेतकल्लुफ से जवाब-सवाल कर रही थी, शर्म से लाल पड़ गयी। दूसरी लड़की आगे आयी।

'तो आप जूती नहीं देंगे?'

....मैं चुप था।

'अच्छी बात है, चलो जी, अभी थाने में रिपोर्ट करती हूँ, तब इनका दिमाग दुरुस्त होगा।'

'सो तो मैं पहले ही कर चुका हूँ।'

'क्या?'

'थाने में रिपोर्ट।'

'किस बात की?'

'यही कि होस्टल की लड़कियाँ इमली तोड़ते वक्त ढेला मारती हैं। एक ढेला मेरे सर में लगा और आधा सेर खून बह गया।'

'आधा सेर खून गया कहाँ?'

'नालियों में बह गया।'

'और आपकी खोपड़ी सही सलामत है?'

'जी! और दूसरी रिपोर्ट आज करनी है।'

'वह क्या?'

'यही कि लड़कियाँ इमली तोड़ने के बहाने जूती फेंकती हैं।'

'क्या सबूत है आपके पास?'

'सबूत मेरे पास है'

'अच्छा, तो जूती आपने ही चुरायी है।'

'चुरायी नहीं, सबूत के लिए रख ली है।'

'अच्छा, तो आप जूती नहीं देंगे?'

'जी नहीं।'

'क्यों?'

'पहले मैं जूती मारने का हरजाना आप लोगों से वसूल करूँगा।'

'उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे।'

'कोतवाल साहब, आप लोगों पर बंगले में अनधिकार प्रवेश का मुकदमा भी चल सकता है।'

'एक बात आपको मालूम है?

'क्या?'

'जिस बंगले में आप रहते हैं, उसमें पहले एक पागल रहता था।'

'था, अब नहीं है।'

'अच्छे पागल से पाला पड़ा है।'

'धन्यवाद! अब आप जा सकती हैं।'

'लड़कियाँ गुस्से से ओठ चबाती हुई चली गयीं। दूसरे दिन होस्टल की वार्डन साहिबा का बुलावा आया। मैंने लिख भेजा, आप स्वयं आकर मिल लीजिये। शाम को श्रीमती सुन्दरा देवी तनतनाई हुई आईं।

'आप कुछ परेशान दिखाई देती हैं, पानी मँगाऊँ?'

'जी नहीं।'

'लेमन मँगाऊँ?'

'जी नहीं।'

'और चाय?'

'नहीं, नहीं, नहीं!'

'अच्छा, तो आप चाहती क्या हैं?'

'मै पूछना चाहती हूँ कि आप हमारी लड़कियों से छेड़खानी क्यों करते हैं ?'

'आपका मतलब ?'

'आपने एक लड़की की जूती गायब कर दी है।'

'जूती तीन तरह से गायब हो सकती है। या तो मैंने आपके हास्टल से चुरायी, या वह लड़की मुझे दे गयी, या जूती स्वयं मेरे पास चली आयी। आप किसे ठीक समझती हैं ?'

'मैं बेकार बहस करना नहीं चाहती।'

'तो क्या चाहती हैं ?'

'लड़कियों ने इमली तोड़ने के लिए जो जूती आपकी बगीची में फेंक दी है उसे कृपा करके वापस दे दीजिये।'

'देखिये, सुन्दरा देवी जी ! आप अपनी लड़कियों को दो एक बात सिखला दीजिये। एक तो जूती से इमली नहीं तोड़ी जाती। दूसरे, किसी की बगीची में जूती फेंकना हो तो दोनों पैर की फेंकनी चाहिये। तीसरे ज्यादा इमली न खाया करें। इससे जुबान खराब होती है।'

'आप बड़े बदजबान मालूम होते हैं।'

'मुझे पहले मालूम होता कि मेरी बगीची की इमली से पड़ोसियों की जबान खराब हो जायगी तो मैं इमली की जगह आम का पेड़ लगाता।'

'मैं आपसे बात करना नहीं चाहती।'

'एक बात मैं पूछना चाहता हूँ। आपसे हुई बातचीत का क्या मैं अपनी किसी कहानी में उपयोग कर सकता हूँ ?'

पर श्रीमती सुन्दरा देवी मेरे प्रश्न का उत्तर दिये बिना ही पैर पटकती हुई बंगले से बाहर चली गयीं। घास की लान न होती तो रक्षा-दल के परेड का आनन्द आता।

इस घटना के बाद एक सप्ताह तक शान्ति रही। अचानक एक दिन दैनिक "लीडर" अखबार में एक विज्ञापन दिखायी पड़ा।

'मेरी एक पैर की जूती खो गयी है। जिस सज्जन को मिली हो, सूचित करें। जूती के लिए पाँच रुपये इनाम में दिये जायँगे। बक्स नं० १४४'

दूसरे दिन दफ्तर में मैंने विज्ञापन का पता लगाया, तो मालूम हुआ कि विज्ञापन देनेवाली देवी का नाम कुमारी लवंगलतिका है। वह मेरी खोपड़ी पर प्रहार करनेवाली मेरी पड़ोसिन ही है। मैंने अपने अखबार में निम्नलिखित विज्ञापन निकलवाया—

'मुझे एक पैर की मखमली जूती मिली है। जिनकी हो अपने पैरों का नाप और पहचान देकर ले जायँ।—बक्स नं० १४५'

तीसरे दिन अखबार में दूसरा विज्ञापन दिखायी पड़ा—

'मेरे एक पैर की जूती खो गयी है, जिस सज्जन को मिली हो अपना पता भेज दें। मैं उन्हें दूसरी जूती भी भेज दूँगी। बाक्स नं० १४४'

चौथे दिन मैंने अपने अखबार में विज्ञापन दिया।

'मुझे एक पैर की मखमली जूती मिली है। यदि एक हफ्ते के अन्दर जूतीवाली या वाला न ले गया तो मैं कूड़े में फेंक दूँगा।—बक्स नं० १४५'

इसके एक महीने बाद तक कोई जवाब न मिला तो एक दिन मैंने मखमली जूती का पार्सल कुमारी लवंगलतिका के पते से भेज दिया। पर पार्सल बैरंग लौट आया। उसके साथ एक पत्र भी था—

'मेरी जूती के प्रेमी!

तुमने मेरी जूती लौटाने की उदारता दिखायी। धन्यवाद!

पर मेरे लिये अब यह बेकार है। क्योंकि मेरे पास जो जूती थी उसे मैंने यमुना में फेंक दिया। अब यह तुम्हारे ही काम आयेगी। साथ ही अपनी शादी का निमन्त्रण भी भेज रही हूँ। पर आने की आवश्यकता नहीं है'।



आर्य समाजी श्वसुर



शादी को पूरे साल भर भी नहीं हुए थे कि होली आ पहुँची। होली में ठूँठों में भी जान आ जाती है। फिर मेरे जैसे भावुक आदमी के जानदार दिल में स्पन्दन होना अस्वाभाविक नहीं था। आदमी के जीवन की एक यह भी आकांक्षा रहती है कि होली पर ससुराल से बुलावा मिले। पर संसार में मूर्खों और कंजूसों की संख्या अधिक होने के कारण ९५ प्रतिशत दामादों की इच्छा अधूरी ही रह जाती है। मैंने अपने को भाग्यशाली समझा जब श्वसुरजी का लिफाफा हाथ में पड़ा। पत्र में केवल चार पंक्तियाँ थीं।

'चिरञ्जीव चूड़ामणि, होली पर बरेली चले आना। गीता गायत्री की भी यही इच्छा है।' निमन्त्रण सादा ही था। आने पर जोर नहीं दिया गया था। फिर भी उसे ठुकराने के लिए काफी आत्मबल की आवश्यकता थी, जिसका मेरे पास अभाव था।

यह तो आप जान ही गये कि मेरी ससुराल बरेली में है । इतना और बता दूँ कि मेरे ससुर जेलर हैं । हैं तो नहीं, रह चुके हैं, पर जीवन में एक बार जो जेलर हुआ वह हमेशा के लिए जेलर रह जाता है । जेलर की बेटी से मैं शादी करने के लिए इसलिए तैयार हो गया कि कभी बड़े घर जाना पड़े तो 'बड़े घर की बेटी' काम आयेगी । पर मेरा दुर्भाग्य कि शादी के बाद ही श्वसुर साहब ने पेंशन ले ली और इस बीच कांग्रेस ने भी सरकार से सुलह कर ली और मुझे जेल जाने का और ससुर साहब की मेहमाननवाज़ी का लुत्फ उठाने का मौका नहीं दिया गया ।

शादी के बाद मुझे दो बड़ी बातें मालूम हुईं । एक तो यह कि मेरे ससुर साहब कट्टर आर्यसमाजी हैं, दूसरे मेरे ससुर साहब के जेलर स्वरूप का तनिक भी प्रभाव मेरी श्रीमती जी पर नहीं पड़ा है । मेरी श्रीमती जी जेलर होतीं तो क्या होता, इस सम्बन्ध की सारी कल्पनाएँ व्यर्थ सिद्ध हुईं ।

श्वसुर साहब के निमन्त्रण में तो नहीं, पर गीता और गायत्री के नाम में ज़रूर कुछ आकर्षण था, जिससे खिंचा मैं ठीक टाइम पर सीधे स्टेशन चला गया । पंजाब मेल पकड़ी, रास्ते में कोई दुघटना नहीं हुई और मैं बरेली पहुँच गया ।

दरवाजे पर ही साली ने और परदे की ओट से श्रीमती जी के मुस्कराते हुए चेहरे ने जो स्वागत किया तो रास्ते की सारी थकावट दूर हो गयी और मस्तिष्क में यह भावना घर कर गयी कि मैं स्वर्ग में हूँ ।

'जीजाजी नमस्ते' का जवाब भी मैं न दे पाया था कि सामने श्वसुर साहब को खड़ा पाया । 'तुम आ गये ?'—जैसे कोई मुलाज़िम आ गया हो ।

'अच्छा !'

इसके बाद गीता ने मुझे सँभाल लिया। गीता श्रीमती गायत्री देवी की छोटी बहन थी। इसलिए मेरी साली थी। सुन्दर थी इसलिए आकर्षक भी थी। कुमारिका थी इसलिए चुलबुली भी थी। रास्ते की सारी थकावट गीता की मीठी बातों ने दूर कर दी। नाश्ते के बाद भोजन। इसके बाद श्वसुरजी की आज्ञा हुई कि 'थके हो सो जाओ।' आज्ञापालन के लिए बिस्तर पर गया, पर नींद कहाँ। ससुराल में पहली रात थी। रात को बारह बजे खिड़की से किसी ने सिसकारा—देखा तो गीता खड़ी थी।

'जीजाजी जग रहे हैं ?'

'मच्छर काट रहे हैं।'

'सो जाइये।'

'नींद नहीं आ रही है न तुम ""।'

'जीजी नहीं आयेंगी।'

'क्यों ?'

'पिताजी की मनाही है।'

'इस मार्शल ला का क्या मतलब ?'

'सबेरे पिताजी से पूछियेगा।'

गीता तो उड़नछू हो गयी और मैं श्वसुरजी को सुबुद्धि आये, इसलिए चार बजे तक गीता पाठ करता रहा। जब कोई नहीं आया तो नींद से ही आँखें लगायीं। ठीक ५ बजे किसी ने जगाया। पहले कन्धा पकड़ कर झकझोरा तो मुझे ऐसा लगा कि कोई अहीर बाला मथनी के स्थान पर मुझे कुंडे में खड़ा कर दूध बिलो रही है। मैंने आँख नहीं खोली। दुबारा फिर किसी ने झटका दिया तो समूची खाट हिल गयी। मालूम हुआ कि भूकम्प आया है और कोई यक्ष मेरी पलंग उठा कर अफगानिस्तान की ओर लिए जा रहा है। तीसरे झटके में

किसी ने उठा कर बिठा दिया। कानों मे आवाज आयी—'अजीब लड़का है।' आँख खुली तो देखा सामने श्वसुरजी खड़े हैं। मैंने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया।

'बहुत सोते हो! ५ बजे बिस्तर छोड़ देना चाहिये।'

'जी, ट्रेन की थकावट थी, नहीं तो मैं रोज घर पर ४ बजे ही उठ जाता हूँ।'

'अच्छा घूमने चलोगे?'

'जी-जी''''आज तो नहीं। जरा सरदी हुई है।' अपनी बात की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए मैंने रूमाल के अन्दर नाक बजाकर दिखा दिया।

'अच्छा-अच्छा।'

श्वसुरजी से पीछा छूटा तो मैंने लिहाफ तानी। बीच में गीता आयी।

'जीजाजी उठिये, मुर्गे बोल रहे हैं।'

'मुर्गों से कह दो अभी सवेरा नहीं हुआ है।'

'वाह जीजाजी, इतने मुर्गों के सामने आपकी बात कैसे मानलूँ।'

'अच्छा भाई अपने मुर्गों की बात मानो, पर मेरा सवेरा नहीं हुआ है। मुझे माफ करो।' मैंने सिर ढँक लिया। एक झपकी भी नहीं लगी थी कि किसी ने फिर छेड़ा। कुछ देर तक चुप रहा और झपकियों के बीच झुँझलाता रहा फिर 'उठो उठो' का स्वर तीव्र हुआ तो मैं लिहाफ के अन्दर से ही बड़बड़ाया 'मुर्गों के मारे नींद हराम—' पर सामने देखा तो श्वसुरजी खड़े हैं।

'मुर्गे—मुर्गे क्या कर रहे थे जी?'

'जी, अभी अभी मुर्गों का एक सपना देख रहा था।'

'मै चार मील का चक्कर लगा आया। तुम अभी सो रहे हो। यह आदत ठीक नहीं।'

'रात मच्छरों ने सोने नहीं दिया।'

'तो मसहरी क्यों नहीं माँग ली ?' 'गीता ओ गीता' गीता को पुकारते हुए श्वसुरजी उधर गये तो मैं बिस्तर से कूदकर सिगरेट की डिब्बी छुपाये स्नानागार के कमरे में घुस गया। सिगरेट जलायी और सोचने लगा कि अच्छे कटघरे में आकर फँसा हूँ। इतने में श्वसुरजी की आवाज आयी।

'गीता, यह तम्बाखू की खुशबू आ रही है। देख, बाहर कोई नौकर बीड़ी तो नहीं पी रहा है ? मैंने कितनी बार मना किया कि धूएँ से फेफड़ा खराब हो जाता है पर कम्बख्त इतने जाहिल हैं कि इनकी समझ में ही नहीं आता।'

श्वसुरजी का वेदवाक्य सुनते ही मैंने सिगरेट बुझाई और डिब्बी को छाती पर पत्थर रखकर नाली में बहा दी। जबतक ससुराल में रहना है यज्ञ के धुएँ के अतिरिक्त और कोई धूम्रपान सम्भव नहीं। मस्तिष्क की फुल बेंच के निर्णय के आगे मैं विवश हो गया।

स्नानागार से निबट कर निकला तो सामने खड़ी गीता मुस्करा रही थी।

'कहिये कह दूँ पिताजी से सिगरेट वाली बात ?

'तुम्हारे पाँव पड़ूँ...।'

गीता भाग गयी। कपड़े भी नहीं पहने थे कि श्वसुरजी का जलद-गम्भीर स्वर सुनाई पड़ा—'बेटा नाश्ता किया ?'

'जी नहीं।'

'तुम्हारे जीवन में संयम नियम के लिए भी कोई स्थान है ? जीवन का यह आदर्श तो ठीक नहीं।'

क्या उत्तर दूँ, मेरी समझ में नहीं आयी इसलिए मौन रहा।

'न तुम्हारे सोने-जागने का नियम है न खाने-पीने का। इसकी

स्वास्थ्य-रक्षा संभव नहीं। शरीर की रक्षा नहीं हो सकती। तुम व्यायाम करते हो या नहीं ?"

'जी नहीं।'

'यह और बुरा है। तुम्हें खुली हवा में थोड़ी कसरत तो करनी ही चाहिये। और हाँ, प्राणायाम मैं बता दूँगा। दो एक आसन भी तुम्हारे लिए उपयोगी होंगे। क्या बताऊँ, मेरा वश चले तो तुम्हें फिर से गुरुकुल भेज दूँ। मैंने देखा पीछे खड़ी गीता मुस्करा रही थी। मैंने कहा— 'गीता को आपने गुरुकुल नहीं भेजा ?' 'क्या बताऊँ, गीता बड़ी अभागी है। जिस साल इसे गुरुकुल भेजने जा रहा था इसकी माँ चली गयी। फिर इन बच्चियों को घर से अलग करने का साहस नहीं हुआ।' जेलर साहब की आँखें आर्द्र हो चली थीं कि गीता ने टोका,—'जीजाजी नाश्ता।'

'हाँ हाँ ले आओ' श्वसुर साहब ने आदेश दिया।

'दूध ताजा पियोगे या गरम करवा दूँ ?'

'दूध नहीं, चाय पिऊँगा।'

'तुम लोगों की बुद्धि को क्या हो गया है। अरे! चाय जहर है जहर। अंग्रेज जहर भी खिलाते हैं तो हिन्दुस्तानी अमृत समझ पीना शुरू कर देते हैं। विलायती कम्पनियाँ जिस-जिस चीज का विज्ञापन करती हैं वही हम खाते पीते हैं। ऐसी मानसिक गुलामी! फिर गांधीजी कहते थे कि हम स्वराज्य के योग्य हो गये हैं।'

'चाय बुरी चीज तो है ही। मेरी भी कोई खास आदत नहीं, पर जरा सरदी की वजह से। खैर जाने दीजिये।'

'नहीं नहीं, दवा के तौर लिया जा सकता है। गीता ओ गीता— जरा नौकर भेजकर चाय तो मंगा ले। अच्छा तुम नाश्ता करो, मैं जरा समाज मन्दिर चलता हूँ। स्वामी अभेदानन्द आये हैं। वेद के बहुत बड़े विद्वान हैं। तुम्हें साथ ले चलता, पर खैर कल चलना। गीता ओ गीता। दस बज गये और अभी नाश्ता भी खतम नहीं हुआ। हम लोग

वक्त की कीमत तो समझते ही नहीं। अच्छा हम चलें, तुम नाश्ता कर लो।'

श्वसुरजी ने पीठ फेरी तो मैंने नमस्कार किया। श्वसुरजी के जाने के बाद गीता चाय ले आयी। मैंने देखा परदे की ओट से किसी को झाँकते हुए। मैंने कहा—गीता, मुझे तो अनुभव होता है कि मेरी शादी शायद तुम्हीं से हुई थी।

'वाह जीजाजी, जीजी कहाँ जायेंगी ?'

गीता ने दरवाजे के परदे की आड़ में खड़ी गायत्री देवी को कलाई पकड़कर घसीटती हुई मेरे बगलमें कोच पर लाकर बिठा दिया।

'ईनाम लाइये जीजाजी।'

'होली में ईनाम तो चुम्बन को कहते हैं।

'जाइये आप बड़े वैसे हैं।'

गीता गायत्री देवी के साथ हमने चाय पी। शाम को सिनेमा चलने का प्रोग्राम तय हुआ।

शाम को हम सब कपड़े पहनकर तैयार हुए तो गीता ने सूचना दी—'पिताजी, हम सब घूमने जा रहे हैं।'

श्वसुरजी ने मेरी ओर देखा।

'तुम भी जा रहे हो ?'

'जी !'

'किधर जाओगे ?'

'सिनेमा की तरफ !'

'क्या कहा, सिनेमा देखने जा रहे हो ? छिः !! सिनेमा अत्याचार और दुराचार के अड्डे हैं। मेरे सामने सिनेमा का कभी नाम न लेना। अच्छा है, तुम सब मेरे साथ चलो। आज समाज में साप्ताहिक सत्संग है। स्वामी अभेदानन्द का भाषण भी है।'

सिनेमा से मुँह मोड़ सब सत्संग की ओर चले। मुझे यह बेवक्त की

शहनाई और अप्रासंगिक सत्संग का प्रस्ताव अच्छा न लगा। सीढ़ियों से उतरते समय एकाएक 'उफ' करके पेट दबाये हुए, बैठ गया।

श्वसुरजी दौड़े आये।

'क्या बात है बेटा ?'

'उफ, बड़े जोरों से दर्द उठा है पिताजी।'

'पेट में दर्द है न! बेवक्त नाश्ता, बेवक्त भोजन! दर्द न हो तो क्या होगा। गीता, जरा लवणभास्कर चूर्ण की शीशी ढूँढ़के लाना तो।

श्वसुरजी के सहारे मैं कमरे में बिस्तर पर लिटाया गया। गीता ने लवणभास्कर चूर्ण की फंकी लगवाई।

'दर्द कुछ कम है ?'

'जी।'

'अच्छा तो आज तुम यहाँ आराम करो। मैं जरा समाज मन्दिर हो आऊँ।'

श्वसुरजी के जाते ही गीता मेरे सिर हो गयी।

'जीजाजी आप भी बड़ी औंधी खोपड़ी के आदमी हैं। सारा गुड़ गोबर कर दिया।'

'भई, मुझे क्या मालूम कि तुम्हारे पिताजी कब किस चीज से बिगड़ खड़े होंगे।'

'लेकिन आपने नाटक अच्छा किया।'

श्रीमती गायत्री देवी को विश्वास नहीं हुआ। मेरे पेट को हलका, स्पर्श करती हुई बोली—अब दर्द कैसा है ?

'हलका-सा मीठा-मीठा सा है। पेट में नहीं, अब यहाँ हो रहा है। मैंने श्रीमतीजी की उंगलियों को पकड़ कर अपनी छाती पर रख लिया। गीता खिल-खिला उठी। श्रीमतीजी ने शरमा कर हाथ खींच लिया।

रात को श्वसुरजी लौटे तो पूछा—

'दर्द कैसा है ?'

'जी ठीक है ।'

'रात को खाना मत खाना ।'

'जी, खाना खा चुका हूँ ।'

'पेट के दर्द के बाद खाना—कोई गँवार होता तो कुछ कहता भी। तुम पढ़े-लिखे आदमी हो। रात को दर्द उभड़े तो परेशान होगे। अच्छा लवण-भास्कर की टिकिया अपने पास रख लो। दो अभी खा लो, दो रात को ले लेना।' गीता ने मेरे बिस्तर पर लवण-भास्कर की शीशी लाकर रख दी।

'तुम्हें नींद तो आती है?'

'कुछ शिकायत है।'

'तुम सोते समय सत्यार्थ प्रकाश का १४ वाँ समुल्लास पढ़ लिया करो। अच्छा रहेगा।'

'सिंध में तो इससे लीगियों की नींद हराम हो रही थी। सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया है।'

'तुम्हारा दिमाग तो उलटा नहीं है? रोज रात को सोने के पहले सत्यार्थ प्रकाश एक समुल्लास पढ़ लिया करो। विचार पवित्र होंगे, मस्तिष्क स्वच्छ होगा, नींद अच्छी आयगी। स्वप्न नहीं होंगे। एक बार मैंने सोते समय मिस मेयो की मदर इण्डिया पढ़ ली थी। रात को मुझे स्वप्न-दोष हो गया। तब से मैं सत्यार्थ प्रकाश के सिवा दूसरी कोई पुस्तक रात को नहीं पढ़ता। सत्यार्थ प्रकाश की अपनी प्रति मैं तुम्हें भेंट कर दूँगा। इसे मेरे गुरुजी ने मुझे दी थी।'

श्वसुरजी आलमारी खोलकर एक मोटी-सी पुस्तक ले आये। गर्द झाड़ कर मेरे हाथों में थमा दी। फिर बोले—

'तुम्हारी अवस्था २५ साल की होगी?'

'जी नहीं, कुछ कम।'

'ठीक-ठीक बताओ।'

'२४ साल तीन महीने'

'तुम्हें पूरे २५ साल तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। अच्छा अब सोओ।'

श्वसुरजी के जाते ही सन्नाटा छा गया। गीता और गायत्री की आवाज तक सुनाई नहीं दी। पूरे १२ घण्टे बाद उल्लू का सबेरा हुआ।

सुबह-सबेरे गीता ने दर्शन दिया। पीछे-पीछे गायत्री देवी भी थीं। नयन भर दर्शन कर मैंने आँख मूँद ली।

'पिताजी कहाँ हैं गीता।'

'घूमने गये। रात कैसी कटी जीजा जी!'

'गीता-गायत्री की माला जपते-जपते।'

'हम लोग भी आपके नाम की माला जप रहे थे, पर जीजाजी! आपका नामकरण करने में बुद्धि का अधिक प्रयोग नहीं किया गया है। चूड़ामणि यह भी कोई नाम है! चूड़ा मटर की खिचड़ी का-सा मजा आता है।"

'बात यह है कि सारी बुद्धि तो तुम्हारे पिताजी के पास चली आयी थी जो तुम लोगों के नामकरण में खर्च कर दी गयी।'

'हम लोगों का नाम बुरा है क्या?"

'नहीं जी। पर गीता देवी गायत्री देवी का जोड़ा रामायणलाल, महाभारत प्रसाद, सत्यार्थ प्रकाश से ही मिल सकता था। मैं तो जरा बेतुका पड़ता हूँ। बात यह है कि न तो मेरा जन्म जेल में हुआ है, न मेरे पिता जेलर थे ''।'

'आप तो नाराज हो गये।'

'नाराज नहीं हूँगा। आज होली है। ससुराल आया था। सोचा था, तुम दोनों से होली खेलूँगा, रंग से सराबोर करूँगा—पर यहाँ रंग का कौन कहे, होली के दिन एक बूँद आँसू गिराना भी मना है। ऐसी होली से मुहर्रम अच्छा है।'

'पिता जी रंग से नाराज होते हैं।'

'तुम्हारे पिता जी हैं। किसी दूसरे के पिता होते तो कुछ कहता।'

'नाराज तो हैं ही, पर आपको मनाने की भी कोई तरकीब ?'

हाँ एक तरकीब है, कल शाम को जाऊंगा। तुम्हारी जीजी को साथ जाना चाहिये यदि, तुम पिता जी से अनुमति ले सको तो''''।'

'क्या ईनाम दीजियेगा ?'

'वही होली का ईनाम !'

'जाइये।'

इतने में खड़ाऊँ खटखटाते श्वसुर जी आ गये। मेरे हाथों में एक मोटी सी पुस्तक थमाते हुए बोले—'अभेदानंद की नई पुस्तक है, 'आत्म दर्शन'। जर्मनी से छप कर आयी है। जरा देखो तो।'

'पिता जी आपके ऊपर रंग किसने डाल दिया ?'

'क्या बताऊँ, ऐसे असभ्य गँवार लड़कों से पाला पड़ा है। लाख बिगड़ने पर भी कम्बख्त कपड़ा खराब कर ही गये। ठंडा पानी उड़ेलने का न जाने यह कैसा त्यौहार है। सरदी जुखाम हो जाय, न्यूमोनिया हो जाय तो सैकड़ों बिगड़ जायें। फिर कपड़े की इस तंगी में रंग डालना मूर्खता है, मूर्खता।'

करीब दो घण्टे बाद नहा, धोकर लौटा तो श्वसुर जी का पहला प्रश्न हुआ—

'पुस्तक देखी ?''

'जी हाँ।'

'क्या पढ़ा बताओ।'

'बहुत अच्छी पुस्तक है।'

'सो तो मैं भी जानता हूँ। पढ़ा क्या ?'

'पढ़ा नहीं, बाहर से देखा भर है।'

'हूँ, लाओ मुझे दो। उपन्यास होता तो अब तक पढ़ कर आते।'

थोड़ी देर बाद लौटे तो बोले—

'तुम्हारा पेट खराब है, इसलिए मूँग की खिचड़ी बनवाई है। खाओगे न ?'

'जी, इच्छा तो नहीं है।

'तब मत खाओ। त्योहार का दिन है। जान बूझकर तबीयत खराब करना ठीक नहीं।'

वाहरी किस्मत! होली में मूँग की खिचड़ी भी नसीब में नहीं! अल्लाह तेरी क़ुदरत! ससुराल तेरी न्यामत!

मैं अभी पेट के चूहों की कसरत ही देख रहा था कि गीता थाली लगाकर ले आयी।

'थोड़ा-सा खा लीजिये जीजाजी।'

'ले आयी है तो खा ही लो।' श्वसुर जी ने भी व्यवस्था दी।

मैंने हाथ बढ़ाया। थोड़ी-सी खिचड़ी पेट में उतारी। होली के पकवानों की याद आयी तो हाथ रुक गया। भूख को लात मारकर मैंने थाली हटा दी। किसी ने कुछ नहीं कहा। नौकर थाली उठा ले गया।

थोड़ी देर में एक तश्तरी लिए हुए गीता आयी। आज नयी बात है जो चार दिनों बाद पान-सुपारी के दर्शन हो रहे हैं।

'लीजिये जीजाजी।'

मैंने तश्तरी की ओर हाथ बढ़ाया तो देखा पान के स्थान पर टिकिया।

'यह क्या है ?'

'लवणभास्कर की टिकिया।'

'दो-चार खालो, नहीं तो पेट में फिर दर्द हो जायगा।'

इच्छा न होते हुए भी लवणभास्कर की टिकिया मुख में रख कर झुँझलाने लगा। गीता कनखियों में मुस्कराहट लिए हुए चली गयी।

इधर मेरी झुँझलाहट बढ़ती जा रही थी।

श्वसुरजी आराम कुर्सी पर 'आत्मदर्शन' में आनन्द विभोर हो रहे थे। मुझे खाली देख कुछ आध्यात्मिक उपदेश प्रारम्भ ही करने वाले थे कि मैं खाँसी के बहाने उठकर स्नानागार के कमरे में चला आया। वहाँ से चुपके से गीता के कमरे में आया। गायत्री देवी भी वहीं थीं।

'भाई, मुझे बरेली जेल से मुक्ति दोगी कि नहीं? या अनशन करना होगा।'

'बड़ी जल्दी घबड़ा गये जीजाजी।'

नहीं गीता, मेरी इच्छा हो रही है कि यहाँ से भाग जाऊँ। मेरा साथ दोगी?

'नहीं, जीजी को ले जाइये।'

'अच्छा तो अपना वादा पूरा करो।'

गीता ड्राइंगरूम में चली गयी।

'पिताजी।'

मैं और गायत्री देवी दरवाजे की सुराख से अपने भाग्य-निर्णय का फैसला सुन रहे थे।

पिताजी ने 'आत्मदर्शन' में डूबा हुआ गम्भीर चेहरा ऊपर उठाया।

'क्या है गीता?'

'जीजाजी जीजी को अपने साथ ले जाने के लिए कह रहे हैं।'

'नहीं, उम्र में अभी दस महीने बाकी हैं। हम धर्म-पुस्तकों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते।'

सुनते ही दिल बैठ गया। मैंने गायत्री देवी की ओर देखा और उन्होंने मेरी ओर। किसी के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। गलती मेरी ही थी जो श्वसुर जी को सही उम्र बताने गया। मुझे क्या मालूम था कि मेरी उम्र का प्रयोग मुझे जबर्दस्ती ब्रह्मचारी बनाने के लिए होगा। खैर, गलती हो ही गयी।

गीता निराश लौट आयी।

'और कोई तरकीब है गीता ?'

'नहीं जीजाजी।'

श्वसुरजी की जिह्वा सचमुच अखण्ड शिला निकली जिससे टकराकर मैं बैरंग घर वापस आया। कहने को मैं ससुराल में होली मनाने गया था। पर अनुभव यह होता है कि बरेली जेल की हवा खाकर लौटा हूँ।

कहानी समाप्त करने के पहले अपने उन पाठकों को एक बहुमूल्य सलाह दूँगा जो अभी तक अविवाहित हैं। शादी के पहले एक बात का पता अवश्य लगा लें कि आपकी भावी पत्नी के पिता आर्यसमाजी तो नहीं हैं ?

मुंशीजी का बेटा जिये



भोर का सपना कभी-कभी बड़ा प्यारा होता है। तो मैं हरम में बेगमों से घिरा हुआ था। कोई पैर दबा रही थी, कोई तलवे सहला रही थी, कोई हाथ की उँगलियाँ चटकार रही थी और कोई बालों पर हाथ फेर रही थी। हुस्न के साये में नींद कहाँ आये—मैं सोने का असफल प्रयास कर रहा था। अध-खुली पलकें हुस्न का शराब पीकर मस्त हो रही थीं। दूर कहीं शहनाई भैरवी की गत बजा रही थी। इतने में जैसे किसी तूफान ने आकर झकझोर दिया। घर पर फट पड़ा—'अजी सुनते हो!'

मैंने आँख खोलकर देखा तो श्रीमतीजी मेरा बदन झकझोर रही थीं। हरम का सुनहरा सपना काफूर हो गया। झुँझलाहट भरी आवाज से मैंने पूछा—'क्या है?'

'सुनते नहीं, शहनाई बज रही है। पत्थर पर दूब जमी है। मुंशीजी को बेटा!'

'मुंशीजी का बेटा जीये। पर तुमने तो मुझे ऐसा झकझोरा कि जैसे जापान में भूचाल आया हो। मुझे क्या मुंशीजी के बेटे की जन्म कुंडली बनानी है?'

'कुंडली तो नहीं पर मुंशीजी आते ही होंगे। इसलिए मैंने कहा, हाथ-मुँह धोकर तैयार हो जाइये।'

'यह बात तुमने ठीक कही। मुंशीजी रसगुल्ले की हाँडी लेकर आते ही होंगे, क्यों? वाह री तकदीर, तुमने भी मुझे मुंशी जी के पड़ोस में ला पटका। जैसे दुनियाँ में और कहीं जगह न रह गयी हो।

यह तो आप जान ही गये—कहने की जरूरत नहीं कि मुंशीजी का प्रथम पड़ोसी होने का सौभाग्य या दुर्भाग्य मुझे प्राप्त है। मुंशीजी को कुछ कहना-सुनना हो, सलाह लेनी हो तो पहला वार मेरे दरवाजे पर होगा। कोई समाचार हो, कुसमाचार हो, दोपहर हो या आधी रात—मुझे अवश्य बुलायेंगे। आत्मीयता बढ़कर ऐसी स्थिति पर पहुँच चुकी थी कि प्रेम भार हो रहा था और मैं मुक्ति-मार्ग की तलाश कर रहा था।

'क्यों जी, एक बात मन में उठ रही है।'

'क्या? कहो न।'

'मुंशीजी को देखकर मन में आ रहा है कि नव विधान के अनुसार रिपब्लिक में नया बेटा पैदा करें।'

'चलो हटो!'

श्रीमतीजी को मेरा प्रस्ताव पसंद नहीं आया, पर उन्होंने सोच-विचार-कर कहा कि हिंदूकोड बिल पास होने पर विचार करूँगी।

इतने में दरवाजे पर खटाखटाहट की आवाज के साथ मुंशीजी की बाँग सुनाई दी। मैं तुरंत तौलिया-साबुन लेकर बाथरूम में घुस गया। श्रीमतीजी ने ऊपर से ही कह दिया—नहा रहे हैं। मुंशीजी निराश वापस लौट गये। पर आधे घण्टे के अन्दर उन्होंने आधे दर्जन बार बाँग दी। अन्तिम आवाज पर आखिर मैं नीचे उतरा। मैंने मुबारकबाद दी तो उन्होंने मारे खुशी के मुझे गोद में उठा लिया। मेरे पाँव जब जमीन पर पड़े तो मैंने देखा मुंशीजी के पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे।

'भाई, आज मैं बहुत खुश हूँ। रात भर नींद नहीं आयी। तबीयत

तो हुई कि तुम्हें जगाऊँ पर बाजे-गाजे का इंतजाम करने में ही सुबह हो गयी। अब बताओ क्या धूम-धाम की जाय। प्रोग्राम बनाना तुम्हारे ऊपर है।'

'हिजड़े भाइयों को खबर कर दी है ?'

'अजी, तुम्हें तो बस हिजड़े ही सूझते हैं। मैं चाहता हूँ, शहर के नामी भांड़, कव्वाल, तवायफ, शायरों का सम्मेलन !'

'जी ख्याल तो बहुत ऊँचा है। बारह दिनों में बारह सम्मेलन तो किये ही जा सकते हैं। छठी को कवि-सम्मेलन और बरही को एम० एल० ए० और मिनिस्टरों की दावत भी की जानी चाहिये।'

'बहुत खूब। इसीलिए तो मैं तुम्हारे पास आया था। मैं चाहता हूँ, लोग भूल जायं कि और किसी को भी बेटा हुआ था।'

'और मुद्दत तक याद करें कि मुंशीजी को एक बेटा हुआ था।'

और हुआ भी कुछ ऐसा ही। बारह दिनों तक हिजड़े, भांड़, कव्वाल, गवैये, शायर, कवि-सम्मेलन, चाय पार्टी और दावत का तार नहीं टूटा। हजारों पर पानी फिर गये। हजारों से हलके होकर भी मुंशीजी खुश नजर आते थे। खुशी के मारे तः मुंशीजी का नींद नहीं आती थी, पर इधर मुंशीजी के पड़ोसियों की नींद हराम थी। बारह दिनों तक लगातार जो लाउडस्पीकर पर संगीत-सम्मेलन चला तो कान के परदे फट गये। सोने के लिए कुछ लोग दूसरे मुहल्ले में दोस्तों के यहाँ चले जाते थे। अपने राम का भाग्य तो मुंशीजी से ऐसा बँधा था कि सोने की कौन कहे, मरने के लिए भी उनका साथ छोड़कर नहीं जा सकते थे।

बरही बीत गयी तो मुहल्ले में शांति लौटी। पड़ोसी घर को लौटे। ऐसा लगता था जैसे महाभारत की लड़ाई अभी-अभी खत्म हुई। [illegible] पर पड़े तो सोचा, अगले दो दिन लगातार सोकर नींद की कमी पूरी करेंगे। श्रीमतीजी ने आकर

जो पैर सहलाये तो मेरी अन्तरात्मा ने आशीर्वाद दिया—

'मुंशीजी की तरह तुम्हारा भी बेटा हो।'

'चलो हटो।'

'अच्छा, एक बात तो बताओ। मुंशीजी को बेटा हुआ है, वह है तो मुंशीजी का ही ?'

'क्यों, कुछ शक है क्या ?'

'मेरा मतलब है, किसको पड़ा है ?'

'तुम्हें।'

'खूब। तुम भी काफी अच्छा मजाक कर लेती हो।'

'मजाक नहीं सच कहती हूँ। मुंशीजी की बेगम साहिबा कहती थीं कि तुम्हारे "वे" मुझे बड़े अच्छे लगते हैं।'

'तो तुमने क्यों नहीं कह दिया कि मुझे तुम्हारे वे (मुंशीजी) बड़े अच्छे लगते हैं। बस, हिंदू कोड बिल पास हो जाता।'

'चलो हटो।'

'अच्छा, यह बताओ कि मुंशीजी की बेगम साहिबा की उम्र क्या है ?'

'पच्चीस।'

'और मुंशीजी की पचपन। अब तुम्हीं बताओ, बीबियों के साथ तीन-तीन प्रयोग करने के बाद ढलती उम्र में बेटा पैदा हो तो कुछ संदेह की गुंजाइश है कि नहीं ?'

'किसी शरीफ औरत के लिए आजकल बेटा पैदा करना भी मुश्किल हो गया है। तुम लोग लाठी लेकर किसी की इज्जत के पीछे पड़ जाते हो। इसीलिए तो मैं कहती हूँ कि कोड बिल पास हो जाय, तो मर्दों की अक्ल ठिकाने आ जाय।'

समझदार पति सोते समय बिस्तर पर ऐसे विषयों पर बहस नहीं करते, जिसका अन्त बिस्तर का विभाजन और आंतरिक अशांति आकर

नींद-भंग में हो। इसलिए मैंने यही उचित समझा कि अब श्रीमती के साथ निद्रादेवी के आवाहन के लिए सम्मिलित प्रार्थना की जाय।

दूसरे दिन प्रातःकाल स्नानागार से ही मुंशीजी की बाँग सुनायी दी। आधे घण्टे बाद नीचे उतरा, तो मुंशीजी ड्राइंग रूप मे दाखिल!

मुंशीजी की मूँछें हँस रही थीं।

'भाई, अच्छा-बुरा जो मुझसे हो सका कर दिया। शहरवाले तो खाहमखाह ही आसमान पर उठाये जा रहे हैं।'

'वाह मुंशीजी, आपने लखनऊ की पुरानी परम्पराओं की लाज रखी है। शहरवाले क्यों न खुश हो। जितनी खुशी आपने दिखायी उतनी महाराज दशरथ को भी न हुई होगी।'

'अजी, मैंने क्या किया? मेरे दादा जी होते तो छत पर खड़े होकर मुहरें लुटाते, मुहरें।'

'मुहरें, मुंशीजी?'

'मैं झूठ थोड़े ही कहता हूँ। मेरे पिताजी की शादी में उन्होंने मुह-रोंकी ऐसी वर्षा की थी कि सड़क पट गयी और लज्जित होकर मेरे नानाजी को आकर उनका हाथ पकड़ना पड़ा।'

'अच्छा, बच्चे की तबीयत कैसी है?' मैंने मुंशीजी की बातचीत की धारा पलट दी।

'हाँ, इसीलिए तो आया था आपके पास। बच्चे के लिए कोई दूध-दार धायका प्रबन्ध कर सकते हैं। कितने में मिल जायगी?'

'दूधदार गाय, यह पाँच-छः सौ में आ जायगी।'

'दूधदार गाय नहीं साहब, धाय।'

'धाय! मुंशीजी क्या घर में दूध नहीं होता?'

'नहीं मैं बच्चे को खिलाफती दूध पिलाना चाहता हूँ।'

'क्या बात कही है आपने मुंशीजी, वाह! मुंशीजी का बेटा भैस का दूध न पीता तो शरम की बात थी।'

'मगर दूधदार मेम मिलेगी कहाँ ? फिर मेरे बच्चे को दूध पिलाने को राजी होगी कि नहीं ?'

'यह मुसीबत तो है मुंशीजी ! मेमें तो अपने बच्चे को दूध नहीं पिलातीं'।

'फिर ?'

'एक उपाय है। विलायती मेमें डब्बे में दूध भरकर भेजती हैं। आप अपने बच्चे को यह विलायती दूध पिलाइये।'

'ठीक। कौन सा दूध अच्छा होगा ?'

'इसके लिए आप शहर के किसी बड़े डाक्टर से बच्चे की जाँच करा लें कि कौन देश का दूध उसके लिए हितकर होगा।'

'अच्छा चलूँ। बहुत परेशान करता हूँ भाई, माफ करना।'

'वाह मुंशीजी, परेशानी काहे की। बच्चे की माँ तो ठीक हैं ?'

'सो तो भूल ही गया। वह बहुत याद करती हैं आपको। रोज आइये तो बच्चे को दिखाऊँ। बच्चे के लिए मैंने व्हाइटवे लेडला के यहाँ स्पेशल पालने का आर्डर दे दिया है। एक धाय का प्रबंध भी करना है।'

'ठीक तो है। विलायती न मिले तो देशी ही रख लीजिये।'

'यही करूंगा।'

मुंशीजी चले गये। अब उनका रोज का कार्य-क्रम बन गया था कि प्रातःकाल मेरे पास आ धमकते और बच्चे, बच्चे की माँ के बारे में घंटों सलाह करते। मुंशीजी को बेटा क्या हुआ कि मेरी शामत आ गयी। मुंशीजी के अवैतनिक सलाहकार' होने के कारण मेरी मुसीबत दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। पहले मुंशीजी हफ्ते में एक दिन रविवार को आते थे, इसके बाद रोज प्रातःकाल आने लगे। पर अब सुबह-दोपहर-शाम, जब जी चाहा आ धमके। जब आते, कोई परेशानी लिए आते। कभी बच्चे का दूध, कभी बच्चे की धाय और कभी बच्चे की माँ मुंशीजी की परेशानी का कारण बनती और मुंशीजी की परेशानियाँ

से मुझे भी परेशान होना पड़ता। जितना दिमाग में मुंशीजी के लिये खपाता था उसका एक भाग यदि किसी सदुद्देश्य में लगाता तो अब तक किसी पिछड़े सूबे का मिनिस्टर अवश्य बन जाता।

बच्चे को कौन-सा दूध पिलाया जाय—यह एक साधारण-सी बात मुंशीजी के के लिए एक गंभीर समस्या बन गयी थी। मुंशीजी एक दिन प्रातःकाल अपनी उलझन लिये आये और मेरी मेज पर एक दर्जन रंग-बिरंगे—लाल-पीले दूध के डिब्बे छोड़ गये। इसके बाद मुंशीजी एक डाक्टर को बुलाने लगे। कोई किसी की तारीफ करता कोई किसी की। मुंशीजी निर्णय नहीं कर पाते थे। यदि कोई माँ का दूध पिलाने को कहता था, तो मुंशीजी बिगड़ खड़े होते। मैंने साहस करके पूछा—

'मुंशीजी, आपका बच्चा अपनी माँ का दूध पिये, इस पर आपको आपत्ति है, बच्चे को या बच्चे की माँ को?'

'मुझे आपत्ति है। मुझे अपनी बेगम की सौंदर्य-रक्षा और बच्चे का भविष्य, दोनों का ख्याल है।'

'समझ गया! तो बस एक उपाय है।'

'क्या?'

'बच्चे को बकरी का दूध पिलाइये।'

'छिः मेरा बच्चा बकरी का दूध पियेगा?'

'जी हाँ! गाँधीजी बकरी का दूध पीते थे।'

'मुझे अपने बच्चे को महात्मा नहीं बनाना है।'

संयोग की बात इस बात-चीत के बाद जितने आये सब ने बकरी का दूध पिलाने की ही सलाह दी। मुंशीजी ने कुछ नानुच किया तो डाक्टर यह कह कर चले गये कि मैं नहीं जानता, बच्चा बीमार पड़ जायगा। बच्चे की बीमारी का नाम लेते ही मुंशीजी झट तैयार हो गये। एक घंटे बाद एक जमुनापारी बकरी मुंशीजी के दरवाजे बंध गयी

और एक आदमी उसे पिश्ते-बादाम खिलाने के लिए नियुक्त कर दिया गया।

'और इन दूध के डब्बों का क्या होगा ?' श्रीमतीने पूछा।

'चाय में काम आयेंगे।'

मुंशीजी के बच्चे के दूध की समस्या हल होने की खुशी में हम लोगों ने सेकेंड शो सिनेमा देखने का निश्चय किया।

थके-मांदे सिनेमा से लौटे थे। सोने का उपक्रम हो रहा था। इतने में दरवाजे पर खटखट हुई। सोचा, कोई आफत आयी। मैंने सर ढंक लिया। पर शुतुरमुर्गी नीति से कहीं आफत टलती है! नीचे जाकर दरवाजा खोला तो देखा—मुंशीजी। बदहवास हो रहे थे।

'क्या बात है ?'

'बच्चे को न्यूमोनिया हो गया है। जल्दी किसी डाक्टर को बुला लाओ।'

'अच्छा अच्छा घबड़ाने की कोई बात नहीं।' मैं कपड़ा पहन कर तैयार हो गया।

'जरा घर में भी भेज दो। उसकी हालत अबन्तब हो रही है।'

मैंने ऊपर श्रीमतीजी से तुरत जाने को कह दिया। और खुद दौड़ा डाक्टर को बुला लाया।

डाक्टर ने अच्छी तरह देख-भालकर पूछा—'क्या शिकायत है ?'

'शाम को तीन दस्त हुए और कँपकँपी सी छूट रही है। दो-तीन छींकें भी आयीं—तभी से बेहोश पड़ा है।'

'खाने को क्या दिया ?'

'खाता तो कुछ नहीं, बकरी का दूध पीने को देता हूँ।'

'अच्छा बकरी क्या खाती है ?'

'पिश्ता बादाम मुनक्का काजू वगैरह।' मैंने जवाब दिया तो डाक्टर मेरा मुँह देखने लगा।

'जी हाँ, ठीक बात है' । मुंशीजी ने तसदीक की ।

'तब तो आपकी बकरी का इलाज करना पड़ेगा ।' डाक्टर ने कहा ।

'और बच्चा ?'

'बच्चे को कुछ नहीं हुआ है ।' डाक्टर चले गये तो मैं मुंशीजी को समझा-बुझाकर श्रीमतीजी के साथ ४ बजे सुबह घर लौटा ।

बिस्तर पर लिहाफ के अंदर बदन गरम करने के बाद मैंने कहा—

'अब तो एक ही उपाय शेष रह गया है ।'

'क्या ?'

'मकान बदल दिया जाय ।'

'कोई सुनेगा तो क्या कहेगा कि घर का मकान छोड़कर किराये में रहते हैं ।'

'कहेगा—कहने दो । न रात को नींद, न दिन को चैन । मुंशीजी से तो मुक्ति मिलेगी ।'

'मगर मकान मिलेगा कहाँ ?'

'पेड़ के साये में सो रहेंगे ।'

उस रात यह महत्वपूर्ण निश्चय करके सोये कि एक सप्ताह बाद मकान छोड़ देंगे ।

दूसरे दिन प्रातःकाल मुंशीजी सु-समचार लेकर आये 'बच्चा तो ठीक है ।'

'बड़ी खुशी की बात है ।'

'आप कुछ उदास दीख रहे हैं ।'

हाँ मुंशीजी मैं मकान बदल रहा हूँ ।

'नहीं तो ? नहीं-नहीं यह नहीं, हो सकता ।'

'नहीं निश्चय कर चुका हूँ ।'

'आखिर कोई कारण भी हो ?'

'मकान मे खटमल मच्छर तो हैं ही....'

'तो आपने मुझसे क्यों नहीं कहा, मैं फ्लिट मंगवाकर छिड़कवा देता। अभी मगवाता हूँ।'

'नहीं मुशीजी। आपने पूरी बात तो सुनी ही नहीं। मकान में खटमल, मच्छर, चूहे, बदर के अलावा भूतो का भी आवास है।'

'सच !'

'जी हाँ। मैंने एक ओझा से पूछा था। उसने बताया कि मुझे बच्चा न होने का यही कारण है।'

'तब तो आप मकान जरूर बदल दें। कबतक इरादा है ?'

'यही दो-एक दिन मे।'

मामला इतनी जल्दी सुलझ जायगा इसकी आशा न थी। उसी दिन शहर के बाहर अपने एक दोस्त के बगीचे मे सामान उठवा ले गया। तागे पर बैठ कर हम दोनों चलने लगे तो मुंशीजी की आँखों में आँसू भरकर आये। बोले—'जाते हैं तो जाइये पर बच्चे को आशीर्वाद तो देते जाइये।'

'आपका बेटा बड़ा लाट बने।'

'अजी, झूठा आशीर्वाद मत दीजिये। कहिये, प्रेसिडेंट बने।'

'आपका बेटा भारत का प्रेसिडेंट बने।'

मैंने देखा मुंशीजी अपने बेटे को देखकर गद्‌गद् हो रहे थे। मुंशीजी का बेटा जीये। हमारा टांगा सरपट चाल से हमें नये मकान की ओर ले जा रहा था।

मैंने श्रीमतीजी को गुदगुदा कर कहा—'आओ हिन्दू कोड बिल पर बहस की जाय।'

'चलो हटो।'

श्रीमतीजी ने मुस्करा कर मुँह फेर लिया।



श्रीमती जी ने कुत्ता पाला

उस रोज सिनेमा में मिसेज सिनहा की गोद में खेलते हुए कुत्ते के पिल्ले को देख-कर मेरी श्रीमती जी को भी कुत्ता पालने का शौक चर्राया। मेरी सलाह माँगी गयी। मैंने देखा मुसीबत सामने खड़ी है, इसलिए पहले से ही तैयार हो जाना चाहिए। मन ही मन निश्चय किया कि 'होम गवर्नमेण्ट' के इस प्रस्ताव का गैरसरकारी विरोध काफी उग्र होना चाहिये। इस बात में तो शक था ही नहीं कि श्रीमती जी के दिल-दिमाग में कहीं कुछ भी आया कि उसे बिना पूरा किये नहीं छोड़ेंगी।

उसी रात को बिस्तर पर मैंने इसके हाथों बात उठाई—"भई! कुत्ता भी कोई पालने की चीज है? ऐसा गंदा जानवर दुनियाँ के परदे पर कोई दूसरा नहीं। जहाँ रहता है वहीं गन्दा करता है। शराबियों की तरह नाबदान और नालियों में सोता रहता है, बगीचों में जगह-ब-जगह सुरंग खोदता है। रसोईघर, ड्राइंग रूम, और शयन गृह की मर्यादा भङ्ग करता है। महात्मा गान्धी के अहिंसा सिद्धान्त की हत्या करता है। घर

पर आये मेहमानों का अप्रिय स्वागत करता है। इसके अलावा कुत्ते की जाति में और भी बहुत सी बुराइयाँ हैं। मैंने एक बड़े अनुभवी व्यक्ति को यह भी कहते सुना है कि काला बुखार कुत्ते के बदन में पलने वाले कीटाणुओं से ही फैलता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि कम्बख्त नींद हराम करता है। अभी तक तुम्हारी नींद में दखल देने वाला अकेला मैं था—अब दो हो जायँगे। अपना नहीं, तो कम से कम मेरे आराम का ख्याल तो तुम्हें रखना ही होगा, और मैं स्वप्न प्रिय हूँ—यह तो तुम जानती ही हो।

"मुझे जानवर पालने में कोई एतराज नहीं। पालना ही है तो कुत्ता क्या, शेर पालो—मैं चूँ तक नहीं करूँगा। शेर नहीं तो बिल्ली, चूहा, कुछ भी पाल लो। चिड़ियों में भी कबूतर, तीतर, बटेर—कोई भी पाल सकती हो। और नहीं तो किसी अनाथ आश्रम से लाकर आदमी का पिल्ला भी पाल सकती हो—मुझे कोई एतराज नहीं होगा। पर एक इस कम्बख्त कुत्ते के पिल्ले से मुझे सख्त नफरत है, चिढ़ है, और क्या कहूँ! तुम मेरी पत्नी हो—मेरे लिए थोड़ा भी बलिदान नहीं कर सकतीं, इतना भी स्वार्थ-त्याग नहीं कर सकतीं?"

मैंने पेशेवर वकील की तरह अपनी बहस को आखिरी जोर देकर खतम किया और यह देखने के लिए कि मेरी इस गिड़गिड़ाहट-भरी वक्तृता का क्या प्रभाव पड़ा, सामने देखा, तो पाया कि श्रीमती जी सो गयी थीं। उनका चेहरा पहले की तरह ही गम्भीर, अप्रभावित और शान्त था।

सुबह आँख खुली तो देखा, श्रीमती जी मेरे जागने की ही प्रतीक्षा कर रही थीं। बोलीं—"मैंने निश्चय कर लिया है।"

"क्या?"

"कुत्ता पालूँगी।"

फैसला सुन कर मेरी वही दशा हुई, जो आजीवन काला पानी पाये कैदी की होती है। दिन भर शान्ति रही। दोनों पक्ष ठंढे रहे। रात को जब हम बिस्तर पर आये तो थोड़ी सरगर्मी दिखाई दी।

'तो कौन-सा कुत्ता पाला जाय ?' यह समस्या थी। इस पर नन्नू नौकर, चमेली नौकरानी, झपेटा चपरासी से राय लेने के बाद मेरी बारी आयी। पूछा गया—"आपको कौन-सी जाति का कुत्ता पसन्द है ?"

"बामन जाति का।"

"मजाक छोड़ो।"

"कायस्थ जाति का कुत्ता भी अच्छा होता है; दुम बहुत खूबसूरती से हिलाता है।"

श्रीमतीजी से जाति-अपमान नहीं सहा गया, गुस्से से बोलीं—"मैं तुमसे जात-पाँत नहीं पूछती, जगह का नाम बताओ।"

"वैसे हिन्दुस्तान कुत्तों का घर तो है ही; पर हाँ, लखनऊ में अच्छे मिलते हैं।"

"फिर लखनऊ का नाम लिया !"

मैंने गलती से गलत मौके पर ससुराल के नगर का नाम ले लिया था, इसलिए दो बार माफी माँग कर जान छुड़ायी। आखिर कुत्ते के बारे में अपना अज्ञान मुझे प्रकट करना ही पड़ा—"भई माफ करो, 'बुलडॉग' के सिवा मैं और कोई नाम नहीं जानता।"

"ना बाबा, 'बुलडॉग' नहीं !"

डर तो 'बुलडॉग' से मुझे भी लगता है, पर मैं चुप ही रहा। अगर मैं अपना डर जाहिर करता, तो श्रीमतजी को केवल 'बुलडॉग' ही पसन्द आता। मुझे थोड़ा संतोष हुआ कि मैं इस विषय का विशेषज्ञ न हुआ।

श्रीमतीजी और कोई दरवाजा न खटखटा कर सीधे श्रीमती सिन्हा के

वहाँ जा धमकीं और उनकी सलाह से एक जोड़ा 'स्पेनियल' पूरे एक सौ रुपये में ले आयीं। मैंने सुना तो दाँतों तले अँगुली दाब ली।

"कुत्ते भी क्या बिकते हैं?"—मैंने बेवकूफ बनते हुए पूछा।

"जी हाँ!"

"सौ रुपये में तो एक हाथी का पिल्ला मिल जाता!"

"मुझे तो कुत्ता चाहिए था।"

"मालूम होता कि इतने दाम दोगी, तो पड़ोस के बैरिस्टर की कुतिया के आधे दर्जन पिल्ले यहीं उठा ले आता।"

"भाड़ में जाय तुम्हारा बैरिस्टर!"

"और जहन्नुम में जाय उनकी कुतिया, क्यों?"

मैंने खैरियत मनाई कि श्रीमतीजी ने मुझे भाड़ में नहीं भेजा। और खुद चली गयीं कुत्तों के चाय-पानी का इन्तजाम करने।

मेरा रकीब घर में आ गया था। यहीं से मेरी परेशानी की कहानी शुरू होती है। अब जब देखिये, तो श्रीमतीजी उन कम्बख्तों की देख-भाल में लगी रहतीं। कभी चाय में बीस्कुट खिलाया जाता, कभी दूध में परौंठा, कभी जलेबी, तो कभी चाकलेट। मतलब यह कि मेरे चाय और नाश्ते का प्रबन्ध चमेली पर छोड़ कर श्रीमती ने कुत्तों का सँभाल लिया। श्रीमती जी ने एक तरह से मुझे तलाक ही दे दिया।

पर मुझसे बिना छेड़े रहा भी तो नहीं जाता।

"तो एक दिन सहेलियों को बुला लो।"

"क्यों किसलिए?"

"और एक ढोलक मँगा लो।"

"जी!" और मुँह बना कर वह एक ओर चल दीं। ऐसा लगा जैसे जुबान पर किसी ने सुलेमानी नमक रख दिया हो।

एक रात कुत्तों के नामकरण का प्रश्न उठा। मेरी राय अनावश्यक होते हुए भी आवश्यक समझी गयी।

"मानो, तो कहूँ ?"

"कहो भी।"

"कुत्ते का नाम कलुआ और कु···।"

"नान्सेंस !"

"कलुआ, हीरा, मोती—यही सब कुत्तों के नाम होते हैं; कोई राय-बहादुर, रायसाहब तो होता नहीं।"

"कोई अच्छा-सा प्यारा नाम बताओ।"

"मुंशी विनोदबिहारी सिनहा—कैसा रहेगा ?"

"मेरे भाई का नाम ! शर्म नहीं आती कहते ? जुबान नहीं कट कर गिर गयी !"

"भई, नाराज क्यों होती हो ! मेरा ही नाम रख लो,—अब तो खुश हो ?"

"चुप रहो।"

"आखिर कोई रिश्ता तो कायम करना ही होगा ?"

"मैं कहती हूँ, चुप भी रहोगे। तुम्हारे दिमाग में कूड़ा और गोबर के सिवा और कुछ भी है ?"

"जरूरत क्या ? कूड़ा-गोबर से काफी अच्छा खाद तैयार होता है !"

"अच्छा बाबा, आज से मैं कभी भूल कर भी तुम्हारी सलाह न लूँगी। मैं कुत्ते का नामकरण खुद कर लूँगी।"

"जरा सुनूँ भी ?"

"मैं अँगरेजी नाम पसन्द करती हूँ।"

"हिन्दुस्तानी कुत्ते नमक-हराम जो हो गये हैं !"

"डार्लिंग ! कैसा रहेगा ?"

"ठीक तो, लेकिन आज से मेरे लिए यह शब्द प्रयोग न करना !"

"अच्छा, अच्छा !"

"और डार्लिंग की बीबी ?"

"डॉली !"

"वाह खूब ! डॉली, डार्लिंग, भई वाह !"

मैंने श्रीमतीजी के दोनों गालों पर एक-एक थपकी दी। श्रीमतीजी नाराज हो गयीं।

नामकरण संस्कार के पश्चात् मैंने सोचा, अब कोई अप्रिय बात न उठने का अवसर ही न आने दूँगा। श्रीमतीजी के कोमल हृदय की सुकुमार भावनाओं को चोट पहुँचाने से आखिर क्या फायदा ? लेकिन श्रीमतीजी का कुत्ता-प्रेम चक्रवृद्धि ब्याज की तरह बढ़ने लगा। फल-स्वरूप नित-नयी कठिनाइयाँ उत्पन्न होने लगीं। मेरे ड्राइंग-रूम, लाइब्रेरी और आफिस में बाहर दरवाजे पर, आर्य धर्मेतराणाम् प्रवेशो निषिद्धः[1] का साइनबोर्ड रहते हुए भी डार्लिङ्ग महोदय सपत्नीक विचरण करने लगे। आवागमन की वृद्धि से मेरा हृदय आतंकित हो उठा। बहुमूल्य-कालीन और कोच डॉली-डार्लिङ्ग के चरण-चिह्नों से अंकित होने लगे। मैं विरोध करता, पर श्रीमतीजी की साड़ियों पर भी यही चिह्न पाकर मुझे चुप रह जाना पड़ा। अब तो असन्तोष का फोड़ा भीतर ही भीतर पक रहा था।

प्रत्येक बात की एक सीमा होती है; पर मेरी सहन-शक्ति और श्रीमतीजी के कुत्ता-प्रेम की सीमा न थी। आखिर संघर्ष होकर ही रहा।

एक रात श्रीमतीजी को जो प्रेम उमड़ा, तो डॉली और डार्लिङ्ग को लिये बिस्तर पर पहुँचीं।

"यह क्या ?"

"आज ये मेरे साथ सोयेंगे।"

"लेकिन सोने का हक तो सिर्फ मुझे हासिल है।"

"कुछ भी हो।"

"और शादी भी अकेले मैंने की है !"

"मैं कहती हूँ, सुलाना पड़ेगा !"

"तो कुत्ते और खाविंद में से किसे पसन्द करती हो ?"

"डार्लिंग तो मेरे साथ सोयेगा ही।"

"तो मतलब यह कि बिस्तर का हिस्सा-बाँट कर दूँ।"

"जैसी आपकी मर्ज़ी !"

मैंने दोनों मसहरी अलग-अलग कर दी। श्रीमतीजी अपने बिस्तर पर जा लेटी, उनके एक ओर डार्लिंग था, दूसरी ओर डॉली। दोनों मसहरियों के बीच एक फासला था, दोनो दिमागों के बीच एक खाई थी, और हम दोनो के बीच था कुत्ता।

अब एक जिक्र सुनिये। बीच ही में एक ऐसी घटना हो गई कि मेरा और श्रीमतीजी का विवाद आपसे आप समाप्त हो गया। बरसात के शुरू में मानसून पूरब से आकर गंगा के किनारे सीधे मेरी कोठी से टकराया। फलस्वरूप जरूरत से ज्यादा पानी बरस गया; सरदी भी ज्यादा बढ़ गयी। मतलब यह कि मुझे सरदी हुई, श्रीमतीजी को जुखाम और श्रीमती के लाडले डार्लिंग को निमोनिया। घर की मुसीबत को देखते ही मेरी सरदी तो रफू-चक्कर हो गयीं थी; रह गयी श्रीमतीजी और उनका डार्लिङ्ग। मुझे फिकर थी श्रीमतीजी की और श्रीमतीजी को अपने डार्लिङ्ग की। मैंने तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखा, तो यह पता चला कि जितनी फिक्र मैं अपनी श्रीमतीजी की करता था, उसकी चौगुनी वे अपने डार्लिङ्ग की। आप इसी एक बात से समझ सकते हैं कि श्रीमतीजी के लिए मेरे डाक्टर बुलाने के पहले ही श्रीमतीजी ने अपने पिल्ले के लिए डाक्टर बुला लिया। और मैं जो नाश्ता करके लौटा, तो देखता हूँ, कुत्ते की नब्ज देखी जा रही है। डाक्टर थे अपने प्रैवेट फैमिली-डाक्टर चोपड़ा।

"भई, तुम चौपायों के डाक्टर कब से हो गये ?"

"आपकी दवा कैसे करते थे।" श्रीमतीजी ने जवाबी थप्पड़ मारा। डाक्टर ने मुस्करा दिया। मैंने चुप रहना ही उचित समझा!

फेफड़े की देखभाल कर डाक्टर ने तजवीज दी—"इसे निमोनिया हो गया है।"

सुनते ही श्रीमतीजी की आँखों में आँसू आ गये। मेरी तबीअत भी रोने को करने लगी। मन ही मन गाने लगा—'कुत्ता मुझको बनाया होता, बनाने वाले!'

"क्यों डाक्टर, कुत्तों को भी निमोनिया होता है?"

"कुत्ते क्या आदमी नहीं होते?"

"जी मुझे शक था!"

खैर कुत्ते आदमी होते हैं, यह एक नयी बात मालूम हुई। आदमी ही समझकर—याने डार्लिङ्ग को मेरे परिवार का सदस्य, नातेदार-रिश्तेदार समझ कर ही तो डाक्टर चोपड़ा उसकी दवा करने लगे। वैसे वे कोई कुत्ता-डाक्टर तो थे नहीं।

डार्लिङ्ग आखिर तो जानवर था, श्रीमतीजी की तेज निगाह के घेरे के अन्दर रहते हुए भी कुछ बदपरहेजी कर बैठा, इसलिए निमोनिया बढ़कर डबल निमोनिया हो गया। डाक्टर के निदान पर अविश्वास भी नहीं किया जा सकता था। एक तो डाक्टर चोपड़ा नगर के अनुभवी डाक्टर थे, दूसरे श्रीमतीजी जैसी नर्स की सेवा प्राप्त होने पर भी मियाँ डार्लिङ्ग का निमोनिया डबल हो गया—यह कम आश्चर्य की बात नहीं!

डाक्टर चोपड़ा की दवा और श्रीमतीजी के आँसू बेकार सिद्ध हुए, और एक दिन सुबह डार्लिङ्ग महोदय आली को दगा कर चलते बने। मुझे भी अफसोस हुआ, कुत्ते से अधिक अपनी श्रीमतीजी के लिए। फिर डार्लिङ्ग भी एक अच्छा कुत्ता था। 'लिल लिवी वोनम'—स्वर्गीय

आत्माओं की शान के खिलाफ कोई बुरा शब्द प्रयोग न करना चाहिए।

खैर, सुबह का नाश्ता, दोपहर का खाना, शाम की चाय और रात का भोजन डार्लिङ्ग के ऊपर न्योछावर करना पड़ा। दूसरे दिन सुबह श्रीमतीजी का गम कुछ कम हुआ। मैंने समझाया 'भई, जिन्दगी-मौत का भी कुछ ठिकाना है! आज हैं कल नहीं। सोच करना बेकार है! गीता में लिखा है…।"

"अच्छा मेहरबानी करके आप चुप रहिये।"

मैं चुप रहा। घाव धीरे-धीरे भरता है। आखिर श्रीमतीजी भी डार्लिङ्ग का फोटो ड्राइङ्ग-रूम में लटका कर धीरे-धीरे भूलने लगीं। मुझे भय था कि कहीं डार्लिङ्ग का सारा प्रेम वह डॉली पर उँडेल दें। और हुआ भी ऐसा ही। पहले डॉली की जहाँ उपेक्षा होती थी, अब वही डार्लिङ्ग की प्रेयसी डॉली—डार्लिङ्ग की यादगार बन गई।

मैंने तो सोचा था, ईश्वर के अदृश्य हाथों ने कुत्ते का गला घोंट दिया; पर उस वक्त यह ख्याल न आया कि कुतिया अभी जीती है। वही किस्सा हुआ—आसमान से गिरे तो खजूर में अटक रहे। और मैं टापता ही रह गया। श्रीमतीजी पर वही पहले का पागलपन सवार था। डॉली को अपने पास सुलाना, अपने साथ खिलाना, और चूँकि प्रेम केवल एक से ही सम्भव है, इसलिए मैं दूर ही दूर रहता था।

आखिर मैं भी खीझ उठा। सहने की भी एक सीमा होती है। अब मैं इस तरह की जिन्दगी से ऊब गया था। झुँझलाकर मैंने दिमाग को खटखटाया—एक तरकीब सूझी। नौकर को आवाज दी—"कुछ चूहे पकड़ लाओ।"

"क्या होगा सरकार?"

"डॉली शिकार करेगी।"

शाम तक चूहे आ गये। श्रीमतीजी सिनेमा जानेवाली थीं। मुझ से कहा—"डॉली को देखना।" और वह चली गयीं।

श्रीमतीजी के चले जाने पर मैंने डॉली को चूहों का शिकार कराया। दूसरे दिन सुबह श्रीमतीजी के शोर से मेरी नींद खुली—"क्या बात है!" मैंने पूछा।

"कुछ नहीं।"

"कुछ तो।"

"कमबख्त डॉली ने चूहा काट कर मेरे बिस्तर पर डाल दिया है।"

"तो क्या हुआ, चादर बदल देना।"

"अरे यह क्या? मेरी साड़ी भी खराब कर दी!"

"रात को सिनेमा से लौटी थीं, तो तह कर के रख देनी चाहिए थी।"

"जी हाँ, सब मेरी ही गलती है।"

"तुम्हारी कौन कहता है—डॉली की शरारत है।"

"और यह जो चूहे आपने पाल रखे हैं!"

"तुमने कुत्ता पाला, तो आखिर मैं क्या शेर पालता?"

बात यहीं खतम हो गयी। सिल्क की साड़ी के लिए दो-चार बूँद आँसू बहाकर डॉली को दो हलके चपत लगा कर श्रीमतीजी ने सन्तोष कर लिया; पर मुझे सन्तोष न हुआ।

शाम को मेरा दोस्त सेठ मिलने आया। उसकी बदली देहरादून हो गयी थी। मैंने कहा—"भई, मेरी एक बीमारी साथ लेते जाओ।"

"कैसी बीमारी?"

"यह कुतिया! राह-खर्च मैं दे दूँगा।"

"क्या खूब! नेकी और पूछ-पूछ। इसे तो मैं खुद ही माँगनेवाला था। पर तुम्हारी श्रीमतीजी।"

"खैर, उनका खतरा नहीं। भैया, तुम ले जाओ बड़ा एहसान मानूँगा!"

यह काम किसी तरह पूरा हो गया। शाम को डॉली की तलाश हुई। मैंने कहा—"कहीं होगी, आ जायगी।"

खाना खाते वक्त फिर पूछा—"डॉली?"

मैंने नौकर से कहा—"जरा बाहर आवाज दे लो।"

सोते वक्त श्रीमतीजी ने फिर कहा—"डॉली नहीं आयी!"

"बस, डॉली-डॉली की धुन लगा रखी है। चाँदनी रात है, किसी डार्लिङ्ग के साथ घूमने निकल गयी होगी।"

श्रीमतीजी चुप हो रहीं। सुबह होते ही नौकरों पर आफत आयी। मैंने भी थाने में हुलिया करा दी; अखबारों में विज्ञापन छपा दिया; पचास रुपये पुरस्कार घोषित करा दिया। अब इतने पर भी डॉली न मिले, तो मेरा क्या कसूर? श्रीमतीजी को भी मेरी सच्चाई में विश्वास था। डॉली न मिलने वाली थी, न मिली। दो-चार घड़े आँसू बहाकर मेरे कई रेशमी रूमाल भिगो कर श्रीमतीजी आखिर चुप हो रहीं।

कुछ दिन बाद घर में फिर पहले जैसा प्रेम पूर्ण वातावरण लौट आया। श्रीमतीजी ने जो प्यार कुत्तों में बाँट रखा था, वह अब मुझे मिलने लगा। मैं सन्तुष्ट था, प्रसन्न था। ऐसे ही प्यार की प्याली के आवेश में एक दिन मैंने श्रीमतीजी से कह दिया कि 'डॉली-दास्तान' में मेरा कहाँ तक हाथ था। श्रीमतीजी ने गालों पर एक हलकी-सी चपत लगाकर कहा—"तुम एक बुरे डार्लिङ्ग हो!"

अब आप ही बताइये, मैं इसका क्या मतलब निकालूँ, 'तुम एक बुरे प्रेमी हो या तुम एक बुरे कुत्ते हो!'



श्रीमतीजी ने नौकर रखा

हमारे सामने कुछ महान समस्याएँ हैं, जैसे—हिन्दुस्तान पाकिस्तान की समस्या, हिन्दी—हिन्दुस्तानी की समस्या, कम्युनिस्ट और हरिजनों की समस्या—इन्हींमें एक नौकरों की भी समस्या है। नौकरों की समस्या कम महत्वपूर्ण नहीं और कितनी विकट हो रही है इसका पता इस बात से चल जायगा कि आजकल सम्पादकों को अग्रलेख लिखने के साथ ही घर पर चूल्हा-बर्तन भी करना पड़ता है। एम० पी महोदय को भाषण तयार करने के पहले घर में झाड़ू लगाना पड़ता है।

हाँ, हमारे कम्युनिस्ट मित्रों को यह समस्या उतनी परेशान नहीं करती, क्योंकि वह अपना काम परस्पर सहयोग से मजे में कर लेते हैं। फिर नौकर रखना उनके यहाँ पूँजीवाद की परिभाषा में शामिल है। एक बार मैंने कम्युनिस्ट पार्टी के मन्त्री महोदय से एक नौकर माँगा तो बेतरह बिगड़ खड़े हुए। बोले—आप हमारी पार्टी का अपमान करते

हैं। मैंने उन्हें लाख समझाया कि मैंने मित्र के नाते उन्हें एक नौकर तलाश करने के लिए कहा था। पार्टी के किसी सदस्य को नौकर नहीं बनाना चाहता था पर उन्हें संतोष नहीं हुआ। बाद में उन्होंने कहा कि मैं किसी मानव मात्र को नौकर बनाने की कल्पना से घृणा करता हूँ।

पर कम्युनिस्टों के समान मेरी श्रीमतीजी में यह दृष्टिसाम्य नहीं है। अपनी श्रीमतीजी से मैं काफी प्रभावित हूँ, इसीलिए मुझ में भी यह दृष्टि दोष वर्तमान है। कभी कभी तो ऐसा हुआ कि मैं कम्युनिस्ट मित्रों के बहकावे में आकर काफी बदल गया, पर श्रीमतीजी के प्रभाव-क्षेत्र में आते ही मस्तिष्क के कम्युनिस्ट कीटाणु लुप्त से हो गये। अब श्रीमती से मेरा यह कहने का साहस तक नहीं होता कि हमें किसी आदमी को नौकर बनाने का अधिकार नहीं।

बात यह है कि मेरी श्रीमतीजी एक बहुत बड़े जमींदार की बेटी हैं। उनके मस्तिष्क का विकास लगान वसूली के वातावरण में हुआ है। ऐसे मस्तिष्क पर मित्रों से उधार ली हुई बातों का क्या प्रभाव पड़ सकता है यह सोचने की बात है। यही कारण है कि श्रीमतीजी की आवश्यकता के सम्मुख मार्क्सवाद की सारी फिलासफी फीकी पड़ जाती है। मेरी श्रीमतीजी को नौकर की जरूरत है—यह एक नग्न सत्य है। श्रीमतीजी की माँग पाकिस्तान की माँग से अधिक जोरदार है। कम्युनिस्ट को कौन कहे नौकरों के निर्माता स्वयं ब्रह्मा भी इसे नहीं टाल सकते। फिर मेरे क्षीण दुर्बल दिमाग में इतना साहस कहाँ!

श्रीमतीजी के पास कोई नौकर ज्यादा दिनों तक नहीं टिकता। नौकर वह वैसे ही बदलती हैं जैसे सिनेमा स्टार साड़ियाँ, कवि सम्मेलन के कवि अपने जूते, भारत के मुसलमान अपना मत। इसे अपना दुर्भाग्य कहूँ या नौकरों का सौभाग्य कि श्रीमतीजी जब किसी को सिक्खा-पढ़ा कर पक्का करती हैं तब वह धीरे से खिसक जाता है। मुझे तो

ऐसा लगता है, जैसे श्रीमती के पास सब ट्रेनिंग लेने के उद्देश्य से ही आते हैं। एक बार मैंने श्रीमतीजी से कहा भी—

'तुम अपनी फीस नियत कर लो।'

'किस बात की ?'

'यही नौकरों को ट्रेनिंग देने की। एक स्कूल खोल दो - अच्छी खासी आमदनी हो जायगी।'

'क्यों जले पर नमक छिड़कते हैं यहाँ जान पर आ पड़ी है और आपको छेड़खानी सूझी है।'

श्रीमतीजी के साथ सहानुभूति तो हो जाती है पर उनका हाथ बँटाने के सिवा और कोई तरीका उनका कष्ट दूर करने का दिखाई नहीं देता। अखबार में नौकर के लिए विज्ञापन भी दिया, पर बेकार। बाद में खयाल आया कि नौकर की श्रेणी के सज्जन अखबार नहीं पढ़ा करते।

नौकर के अभाव में श्रीमतीजी का मस्तिष्क मनोविज्ञान के अनुसार चिड़-चिड़ा हो जाता है। गुस्सा जल्द और झुँझलाहट ज्यादा आती है। श्रीमतीजी और मेरे बीच में रिक्त स्थान होने के कारण वे सारे प्रहार जो नौकर सहता था, मुझी को झेलने पड़ते हैं। इसलिये मैं शीघ्र से शीघ्र इस गृह-संकट को दूर करने के लिए प्रयत्नशील था।

पर नौकर मिल जाने से ही तो झगड़ा खतम नहीं होता। श्रीमतीजी के नजर के नीचे उतरना भी चाहिये। दर्जनों नौकर दरवाजे से इसलिये लौटा दिये गये कि उनका प्रथम प्रभाव (इम्प्रेशन) अच्छा नहीं पड़ा।

श्रीमतीजी किसी का चेहरा देख कर बता देंगी कि वह चोर है, झूठ बोलता है, अविश्वसनीय है। मनोविज्ञान का मैं 'क ख ग' भी नहीं जानता, इसलिये श्रीमतीजी की बात पर विश्वास कर दूसरा नौकर

तलाश करता हूं। अगर मुझे असुविधा न होती तो मैं श्रीमतीजी की सेवाएँ सी० आई० डी० विभाग को अर्पित कर देता।

नौकर के बाह्य दर्शन की प्रथम परीक्षा पास करने के बाद श्रीमतीजी की इंटरव्यू की अग्नि-परीक्षा प्रारंभ होती है। नौकरों का यह इंटरव्यू आई० ए० एस० के नौकरों के इंटरव्यू से कम नहीं। कितने तो शुरू में ही नमस्कार कर घर की राह लेते हैं। श्रीमतीजी के कुछ प्रमुख प्रश्न ये हैं।

'सबेरे कै बजे उठता है?'

'साड़ी को तह करना जानता है?'

'बिजली जला-बुझा सकता है?'

'तरकारियों के नाम जानता है?'

'पढ़ना जानता है?' इत्यादि।

श्रीमतीजी की सारी प्रश्नावली, सारा मनोविज्ञान धरा रह गया, जब उन्होंने कार्याधिक्य से ऊबकर एक देहात से भाग कर आये हुए लड़के को बिना परीक्षा के ही रख लिया। आश्चर्य तो हुआ, पर उस समय चुप ही लगाना उचित जान पड़ा।

धीरे-धीरे जब नौकर के गुणों की गठरी खुली तब मालूम हुआ कि इसकी प्रत्येक बात श्रीमतीजी के आदर्शों के विरुद्ध निकलती है। पहले नाम ही लीजिये। श्रीमतीजी ने पूछा—तेरा नाम क्या है रे?

'भंडोला।'

'क्या?'

'भंडोला!'

'यह भी कोई नाम है?'

'वाह! खूब!! मैंने हस्तक्षेप किया। 'भंडोला, ढोंगा, फुंडा, भदुआ, धुबरा, मकुंवरा-यही तो नौकरों के नाम होते हैं। कोई ताराचंद और सुंदरलाल तो होता नहीं।'

'लेकिन मैं तो नहीं पसंद करती—भंडोला। कितना भोंडा नाम है। तुम अपना नाम भोला रख लो।'

पर भंडोलाजी नहीं राजी हुए। उनको अपना पुराना नाम ही पसंद था। श्रीमतीजी ने पहली बार हार स्वीकार की। बोलीं–दुनियाँ के जितने भोंडे बदसूरत नाम होंगे सब नौकरों को ही मिलते हैं।

'बात यह है कि भंडोला के पिता उतने कलात्मक नहीं थे जितना कि·········।' मैं क्या कहने जा रहा था, पर एक नये महाभारत के सूत्र-पत का कारण बनने के पहले ही मैंने जिह्वा को 'सेंसर' कर दिया।

श्रीमतीजी नौकर की गुस्ताखी नहीं सहन कर सकती थीं। अधिकांश नौकरों के निर्वासन का कारण उनका श्रीमतीजी के क्रोध का आवेग सहन न कर सकना था। श्रीमतीजी के क्रोध को हाल का आविष्कार एटम बम भी नहीं पा सकता। एक बार उन्होंने मेरे हाथ से किताब खींच कर नौकर के सर को लक्ष्य किया, पर निशाना चूक गया और वह खिड़की के बाहर चली गयी। मैंने तुरत, झाँक कर देखा तो मेरी पुस्तक एक लारी के ऊपर पड़ी थी। लारी गतिशील थी; इसलिये मुझे श्रीमतीजी के क्रोध का मूल्य लाइब्रेरी में चुकाना पड़ा।

भंडोला के साथ श्रीमतीजी ने सर खपाना शुरू कर दिया। श्रीमतीजी के नौकरों की शिक्षा में मैं हस्तक्षेप नहीं करता था—बस दूर से तमाशा देखता था। चुपके से सुना तो मालूम हुआ कि श्रीमती जी उसे तरकारियों का शुद्ध उच्चारण सिखा रही थीं, पर भंडोला की सुसंस्कृत जिह्वा को वह अग्राह्य हो रहा था। भंडोला जी टमाटर, को टाटमार भिंडी को भेंडी और सलजम को सालाजम कहते थे। श्रीमती जी के लाख सर मारने पर भंडोला आजकल के प्रगतिशील लेखकों की तरह भाषादोष मानने को तैयार नहीं थे।

एक दिन बिस्तर पर अधलेटा दफ्तर की एक फाइल ठीक कर रहा था कि घर के अंदर से 'अल्ला हो अकबर' जैसी आवाज सुनायी दी।

घबड़ाकर अंदर गया तो देखा भंडोला जी मजे में बिरहा गा रहे थे। श्रीमती जी स्वीटर बुनना छोड़कर दौड़ी आयी। सम्मानित श्रोताओं को आश्चर्यचकित देखकर भंडोला जी ने गाना स्थगित कर दिया। श्रीमती जी के लाल चेहरे को देखकर कोई भी गाना भूलकर रोने लगता। भंडोला के चेहरे पर भी भूडोल के लक्षण स्पष्ट थे। मुझे भय था कि शीघ्र ही श्रीमती जी के क्रोध का विस्फोट होगा, पर श्रीमती जी गम्भीर स्वर में बोलीं—

'देखो जी! तुम्हें गाना हो तो घर से बाहर कहीं दूर जाकर गला फाड़ना, समझे। घर में फिर कभी रेंकते देखूँगी तो····।' भंडोला जी सर खुजलाते बाहर चले गये।

श्रीमती जी नौकरों का जोर से हँसना, रोना-गाना और तो और छींकना भी पसंद नहीं करतीं। अन्याय तो है ही पर भंडोला का पक्ष लेकर श्रीमती जी से न्याय-युद्ध कौन करे।

बाहर आया तो देखा भंडोला जी चबूतरे पर बैठे-बैठे बीड़ी पी रहे हैं। सामने दो बकरे लड़ रहे हैं और भंडोला अपना विशाल मुण्ड हिलाकर कह रहे हैं—'उहँऽऽउहूऽ'।

भंडोला जी के आनन्द में बाधा न देकर मैंने दफ्तर की राह ली।

शाम को लौटा तो देखा भंडोला जी उसी स्थान में विराजमान हैं, पर इस समय चेहरे की रूप-रेखा में कुछ परिवर्तन है।

मैंने पूछा—'क्या बात है?'

भंडोला जी फूट-फूट कर रो पड़े।

अन्दर आया तो देखा श्रीमती जी वैसी ही भरी हुई बैठी थीं, जैसे चुनाव के दिनों में समाजवादी लीग। छेड़ने का साहस नहीं होता था। पर श्रीमती जी खुद ही फूट पड़ीं—

'आपका यह नौकर तो मुझे पागल बना देगा।'

'क्या हुआ?'

'हुआ क्या, लिफाफे लाने के लिए पैसे दिये तो आकर डाक डब्बे में डालकर चला आया।'

श्रीमती जी के गुस्से पर मैं स्नेह का शीतल जल छिड़ककर बाहर आया तो देखा कि भंडोला जी अभी सिसक रहे हैं। मैंने जो शांत किया तो और भी फूट पड़े।—

'आप ही बताईं सरकार, हमार कौन दोष रहा। डाकखाना हम जानत नाहीं रहे। एक से पूछा तो वह लाल डब्बा बताय दिहिस। उसी में पैसा डालकर हम बहुत देर तक खड़े रहे। पर सरवा लिफाफा नाहीं दिहिस, तो हम लौट के चलि आयें।'

भंडोला जी मुझे निर्दोष जँचे। वास्तव में दोष तो ब्रह्मा का है जो बुद्धि वितरण में साम्यनीति का व्यवहार नहीं करते। कम्युनिस्ट यदि ब्रह्मा के विरुद्ध विद्रोह करें तो मैं उनका साथ दूँगा। ब्रह्मा का बुर्जुआ मस्तिष्क बदलने के लिए उनके पास कुछ मार्क्सवादी साहित्य तो भेज ही देना चाहिये।

भंडोला जी असाधारण व्यक्ति थे। उनके साथ निर्वाह करने के लिए असाधारण धैर्य की जरूरत थी। श्रीमती जी में यह धैर्य नहीं था, पर मुझ में काफी मात्रा में था।

भंडोला को आये एक सप्ताह भी नहीं हुआ था कि वह अपनी असाधारण प्रतिभा का प्रदर्शन करने लग गये। एक दिन की बात है— मैं कमरे में बैठा लिख रहा था। अचानक बाहर किसी मित्र ने आवाज दी। भंडोला जी से पंखा बन्द करने के लिए कहकर मैं नीचे चला गया। पाँच मिनट बाद लौटा तो देखता हूँ कि भंडोला बिजली के पंखे को छड़ी से पीट रहे हैं।

'यह क्या हो रहा है?'—मैंने भंडोला के हाथ से तुरत् छड़ी छीन ली।

'सरकार, हम बन्द करत रहे तो हमरे हाथ में मार दिहिस।'

मैं मौन रह गया। श्रीमती जी को इस बात की छाँह तक नहीं लगने दी। पंखे को मरम्मत के लिए भेज दिया। कम्बख्त ने ढाई सौ रुपये के पंखे का भुरता निकालकर रख दिया था।

उस दिन भंडोलाजी को मैंने बिजली जलाना-बुझाना, पंखे को चलाना, टेलीफून आदि बहुत से आवश्यक कामों का रहस्य बताया। भंडोला जी वैसे ही चकित हो रहे जैसे एटम बम के आविष्कार से जापानी।

दूसरे दिन सबेरे भंडोला ने मुझे जगाकर कहा—सरकार टेलीफून बोलावत है। मैंने पूछा—कौन है? नाम पूछा।

'नहीं सरकार, वह तो 'हालो-हालो' करता रहा। हिलावत रहे, पर कुछ बोला नहीं। चुप्पी साध गया।' भंडोलाजी की बुद्धि पर तरस खाकर मुझे भी चुप्पी साधना पड़ा। मैं समझता था कि श्रीमती जी जब नौकर के लिए कोई शिक्षण-संस्था खोलेंगी तो मैं भी कुछ सहयोग दे सकूँगा, पर देखता हूँ, मुझे असहयोग ही करना पड़ेगा।

मनोविज्ञान की मैंने कई पुस्तकें पढ़ीं पर मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि घर में भंडोला जी की उपस्थिति श्रीमती जी कैसे सहन कर रही थीं। उनका शिक्षणकार्य भी चल रहा था। भंडोला जी पाठ्यक्रम में बड़े उत्साह से भाग लेते। सबक लेते समय उनकी तल्लीनता उल्लेखनीय होती थी। लगता जैसे वह सत्यनारायण की कथा सुन रहे हों।

उस दिन मैंने देखा श्रीमती जी बड़े प्रेम से भंडोला को समझा रही थीं कि देखो, कोई शरीफ घर पर आये तो पहले उसे नमस्ते करो, फिर पूछो कि आप कहाँ से आ रहे हैं—क्या काम है? भंडोला जी ने वैसे ही मुँह हिलाया जैसे गणेश जी लड्डू खाने के बाद सर हिलाकर स्वीकृति देते हों।

दूसरे ही दिन दफ्तर से बड़े साहब का चपरासी आया—रोबदार वर्दी, फब्बेदार साफा देखकर भंडोलाजी ने बड़े अदब से सलाम किया। पूछा—

'आप कहाँ से आवत हैं ?'

'दफ्तर से—बड़े साहब का चपरासी हूँ।'

'का कहे चपरासी—धत्तेरे की। सार चपरासी को हम नमस्ते करीं। हुँ—ई सब बहूजी की कसूर हौ। ऊ न कहतीं तो हमार इज्जत काहे पानी-पानी होत।' भंडोलाजी इधर मन ही मन कुढ़ रहा था, उधर चपरासी थोड़ी देर तक भौंचक्का खड़ा रहा और लौट गया।

दूसरे दिन सुबह दफ्तर में बड़े साहब ने पूछा—

'क्यों मि० गुप्ता, आपके नौकर ने मेरे चपरासी का अपमान किया ?'

'कैसे हजूर ?'

'उसको साला कहा ?'

'बिना रिश्ते के साला कहा तो गुस्ताखी थी हुजूर। मैं उसे डाटूँगा। जरा जंगली है। पालतू बना रहा हूँ।'

'नहीं मि० गुप्ता, उसे निकालकर दूसरा नौकर रख लो।'

घर आकर श्रीमती जी से कहा तो बोली—'यह तो बहुत बड़ी गुस्ताखी है। आज जरूर निकलूँगी। तुम्हारी नौकरी पर आ जाती तो।'

तुरत् भंडोला को बुलाया। भंडोला काँपते हुए आया।

'क्यों रे, तूने साहब के चपरासी को साला कहा ?'

'हाँ हजूर, एक बार कहा था।'

'बहुत बुरा किया।'

'एमें बुरा माने का बात है सरकार।

मैं चुप हो गया। श्रीमतीजी के नौकर से ज्यादा छेड़खानी कर भी नहीं सकता था। श्रीमती जी सब चुपचाप सुनती रहीं। भंडोला चला गया तो मैंने कहा—

'तुम बेकार नौकरों के पीछे पड़ी रहती हो। मैं तो तुम्हारा काफी अच्छा काम कर लेता हूँ।'

श्रीमती जी को मेरी बात जँच गयी और उन्होंने अब नौकरों को तलाश करना छोड़ दिया है। भंडोला को निकालकर उसकी जगह पर एक हिन्दी के एम०ए० को रख लिया है।

अब श्रीमतीजी की नौकरी मैं बजाता हूँ। वे मुझे प्यार में कहती हैं—माईमोस्ट ओबीडियट सर्वेंयट (मेरे परम आज्ञाकारी सेवक) तो मैं गद्‌गद हो दुम हिलाने लगता हूँ।

इस्तीफा



जिस रोज "नारी स्वाधीनता समिति" की सभानेत्री श्रीमती सरला देवी ने मेरे शांत-गृह में प्रवेश किया, उसी रोज मैंने समझ लिया कि घर में कोई आफत आनेवाली है। मेरा भय अकारण न था।

दूसरे ही दिन मैंने अखबार में पढ़ा-श्रीमती शेफालिका देवी समिति की सेक्रेटरी चुनी गयी हैं। समाचार सचित्र था। यहाँ यह भी लिख देना उपयुक्त होगा कि शेफालिका देवी मेरी देवीजी का नाम है।

तीसरे दिन श्रीमतीजी के सर में दर्द पैदा हो गया, खाना नहीं बन सका। होटल में खाना पड़ा।

चौथे दिन नारी-स्वातन्त्र्य समस्या पर मेरा उनका वाद-विवाद हुआ, जो रात को एक बजे स्थगित किया गया। कोई समझौता न हो सका।

पाँचवें दिन "स्त्रियों का अधिकार" नामक लेख लिखकर 'चाँदनी' में छपने के लिए भेजा।

छठे दिन अपनी कुछ सखियों के साथ समिति की मीटिंग में गयीं। वहाँ से रात को दस बजे लौटीं।

"आप आ गये ?"

"आप आ गयीं ?"

दोनों के प्रश्नों का उत्तर प्रश्न था। रात-भर मौन व्रत का पालन किया गया। सातवें दिन सुबह मौन-व्रत-भंग हुआ। यहीं से मेरी कहानी प्रारम्भ होती है।

आज संडे था, इसलिए सुबह देर में हुई। हर एक काम में एक घण्टा लेट था। नींद खुली, तो नौकर ने चाय लाकर सामने रख दी। आज एक हफ्ते से श्रीमतजी के हाथ की सुस्वादु और मधुर चाय पीने को नहीं मिली। नौकर के हाथ की चाय मेरी सुसंस्कृत जीभ को क्यों पसन्द आने लगी! केवल चखकर रख देता था।

"आप जग गये ?"—अभी शृंगारालय से 'टायलेट' खतम करके चली आ रही थीं। मेरा दिमाग भीनी-भीनी मीठी खुशबू से भर गया।

"जी हाँ, कहिये ?"—सर से पैर तक उन्हें ध्यान से देखते हुए मैंने पूछा—"क्या आज्ञा है ?"

"कुछ नहीं,—यही आज जरा सिनेमा देखने जाना चाहती थी।"

"तो इसके लिए पूछने की क्या जरूरत थी! खैर, आज संडे है; मैटिनी में मैं भी चला चलूँगा।"

"लेकिन........"

"लेकिन क्या ?"

"यही कि मैं मैटिनी नहीं, नाइट-शो में जाऊँगी और आपके साथ नहीं, अकेली जाऊँगी।"

मेरे पैर-तले की जमीन, नहीं नहीं, पीठ-तले का बिस्तर खिसक गया। मैं मुँह बाकर उनकी तरफ देखता रह गया। उन्होंने अपनी आँखें फेर लीं। मैंने अपनी आँखें मूँद लीं। वह चल दीं। मैं उनके चप्पलों

की आवाज सुनता रहा। आवाज बन्द होते ही मैं उठ बैठा।

"हे भगवान, रक्षा करो। बीसवीं सदी के इक्यावनवें साल में ही क्यों प्रलय उपस्थित करना चाहते हो!"—मैंने जीवन में पहली बार ही ईश्वर की जरूरत महसूस की।

बची-खुची चाय पेट में उतार कर मैं बिस्तरे से कूद पड़ा। गले में कुरता और पैरों में चप्पल डाल मैं बंगले से निकल कर सड़क पर आ गया। लक्ष्य का पता पाये बिना ही पैरों की जोड़ी धीरे-धीरे एक तरफ चल दी। 'मस्तिष्क के जजों की बेंच' अभी इस समस्या पर विचार कर रही थी कि किस दिशा को पकड़ा जाय।

मेरी बीबी आजादी चाहती है—इस मर्ज की दवा किसी डाक्टर या हकीम के यहाँ तो मिलेगा नहीं। ज्योतिषी के रमल-पाँसे और अखबारों में नित्य छपने वाले वशीकरण-मन्त्र के विज्ञापन पर विश्वास नहीं! आखिर समस्या हल हो तो कैसे? और विश्व के कीड़े-मकोड़े जीव-जन्तुओं को साम्यवाद का सबक सिखानेवाले तथा नर-मादा को एक आँख से देखने वाले नगर कांग्रेस कमेटी के सदस्य, समाजवादी कार्यकर्ताओं से और देवियों के चप्पल समेत युगल पाद-पद्मों की पूजा करने का उपदेश देनेवाले आर्य-समाज मन्दिर के अधिकारियों से कोई सहायता की आशा न थी। क्रासिंग पर खड़ा-खड़ा यही सोच रहा था कि किधर जाऊँ कि अचानक अपने पुराने क्लब की याद आ गयी। आज रविवार है। दस बज रहे हैं। भूतों की मण्डली अवश्य जमी होगी। क्लब के आफिस का पता पाते ही पैर-गाड़ी तेज हो गई। पाँच मिनट में क्लब के गेट पर था!

मेरी शादी को आज पूरे दो माह हुए होंगे और क्लब की अन्तिम बैठक किये भी दो माह से दो-चार दिन कम ही। श्रीमतीजी के घर के अन्दर पैर रखते ही मेरा घर के बाहर पैर रखना बन्द हो गया। सच पूछिये तो घर से बाहर जाने की जरूरत और तबीयत ही नहीं होती थी। श्रीमती-

जी की कम्पनी के आगे यार-दोस्त और क्लब का रङ्ग भी फीका पड़ गया था। 'घर पर नहीं हैं' और 'कहीं बाहर गये हैं' का सन्देश सुनकर मेरे घर से यार लोग दर्जनों बार निराश लौट चुके थे। सभी खार खाये कुढ़े बैठ थे। इसीलिए आज क्लब में जाते वक्त कुछ झिझक-सी मालूम हो रही थी। ठीक वैसी ही, जैसे किसी लड़की को पहली बार ससुराल से लौटने पर अपनी सखियों से मिलते वक्त होती है। यह सोचकर मैंने शादी करके कोई पाप तो किया नहीं (यदि किया भी तो प्रायश्चित्त विधान है ही), अपने आगमन की सूचना देने के लिये घंटी दबा दी। घण्टी के बजने के साथ ही भीतर खलबली-सी मच गयी। असमय में विघ्न-बाधा पहुँचाने वाले के लिये विधान निश्चय कर लेने पर दरवाजा खुला। मैं भीतर पहुँचा। सब के चेहरे आश्चर्य से पुते थे। मेरे आने की किसी को स्वप्न में भी आशा न थी। एक बार फिर शान्ति छा गयी।

चार की चौकड़ी चार कोने में बैठ गयी। बीच में गाव तकिये के सहारे पण्डित चण्डीचरण चूड़ामणि सम्पादक 'अगड़धत्त' सभापति के रूप में विराजमान थे। एक ओर डाक्टर कालीकृष्ण शर्मा, दूसरी ओर प्रोफेसर प्रिय कुमार और दोनों के बीच में तर्कशिरोमणि, एडवोकेट कमलनयन की दो काली–काली आँखें चमक रही थीं। क्लब के केवल पाँच ही सदस्य थे।

डाक्टर, प्रोफेसर, एडवोकेट, सम्पादक और लेखक। इसमें अन्तिम स्थान की पूर्ति मैं करता था।

क्लब में पूर्ण शान्ति विराज रही थी। दिल की धड़कन साफ सुनाई दे रही थी। मैं उठा और सभापति के सामने साष्टांग दण्डवत करते हुए कहा—"रक्षा करो भगवान! मैं शरण में हूँ।"

क्लब के नियम के अनुसार सभापति की अनुमति लिये बगैर अनुपस्थित रहने पर इसी प्रकार माफी माँगनी पड़ती थी।

"उठो वत्स, तुम्हें क्या कष्ट है ?"—सभापति ने आश्वासन दिया।

"गुस्ताखी माफ हो भगवन्, मेरी नव-विवाहिता पत्नी स्वाधीनता चाहती है ! पाहिमाम्, मेरी रक्षा कीजिये भगवन् !"

"शान्त हो वत्स, शान्त हो। इसके लिये उचित प्रबन्ध कर दिया जायगा। चिन्ता न करो। परन्तु बिना सूचना दिये दो महीने तक अनुपस्थित रहने और अपनी शादी के अवसर पर तथा बाद में क्लब के सदस्यों की उपेक्षा करके तुमने क्लब का अपमान किया है। पहले इसके लिये पंचभूतों की यह संस्था तुम्हें उचित दण्ड देगी। बोलो, स्वीकार है ?"

"मैं अपने अपराधों के लिये क्षमा चाहता हूँ। क्लब का दंड मुझे शिरोधार्य होगा।"

"मुझे बड़ी खुशी हुई कि क्लबका पुराना सदस्य भूला-भटका शाम को घर वापस लौट आया। इसके उपलक्ष में कल मेरी ओर से बाद की गोगा में बजके पर 'केशरिया' छनेगी।"—यह सुनकर करतलध्वनि हुई। सभापतिजी मेरी ओर लक्ष्य करके बोले—"और मिस्टर प्रभातकिरण को अगले दो मास तक क्लब की भंग-बूटी आदि का प्रबन्ध करना पड़ेगा। क्लब के सदस्यों की क्या राय है ?"

"ठीक है, ठीक है !"—सब सदस्य सहमत थे।

"मुझे भी स्वीकार है।"—मैंने अपनी सहमति प्रदान की। सभापति ने उठकर मुझे गले लगाया और अपने ही निकट बैठा कर बोले—

"तुमने शादी की—इतनी बड़ी गलती की और हम लोगों से राय भी नहीं ली, उसी का यह दण्ड भोग रहे हो। हाँ, तो तुम्हारी स्त्री स्वाधीनता चाहती है ?"

"जी हाँ, मैं एक हफ्ते से उसके कार्य-कलापों से परेशान हूँ। वह नारी

स्वाधीनता समिति की सेक्रेटरी भी बन गई है और मेरे शान्त गृह को पुरुषों से समानाधिकार के लिए लड़ने का अखाड़ा बना रखा है। वहाँ बड़ी-बड़ी पहलवानिने इकट्ठी होती हैं। मैं तो डर गया हूँ, अपनी श्रीमतीजी से भी निराश हो चला हूँ। आज वह सिनेमा देखने जा रही है—नाइट शो और 'ऑल एलोन'! बस आप ही रक्षा करिये भगवन् !"

"घबड़ाओ नहीं, सब ठीक हो जायगा।"—सभापति ने मुझे अभय दान दिया। इसके बाद ही क्लब की बैठक उठ गयी।

× × × ×

क्लब से लौटकर देखा, तो घर पर श्रीमतीजी एक नयी नवोढ़ा को समानाधिकार का सबक सिखा रही थीं। पास पहुँचा, तो सुना—नवा-गता देवीजी ने प्रश्न किया—"यह कौन हैं ?"

"यही हैं मेरे शरीर के स्वत्वाधिकारी—मेरे पूजनीय पतिदेव !" —
मेरी श्रीमतीजी ने उत्तर दिया।

मैं सुनी अनसुनी करता हुआ सीधा अपने कमरे में घुस गया। बिस्तर पर पड़ रहा। बहुत देर तक अपनी श्रीमतीजी के विषय में सोचता रहा। उनके और मेरे बीच की खाई बढ़ती ही जा रही थी। इसके लिए समझौते का मार्ग ढूँढ़ने का प्रयास करता-करता सो गया।

नींद खुली, तो देखा शाम हो गयी थी। उठकर बिजली जलाई। सात बज चुके थे। नौकर से पूछने पर ज्ञात हुआ कि बीबीजी घूमने गयी हैं ! स्वाधीनता का प्रयोग प्रारंभ हो चुका था—मेरा दिल धड़कने लगा।

बाहर बरामदे में आकर बैठा। नौकर चाय लाकर रख गया। मेज से दैनिक पत्र उठाकर पहले पृष्ठ पर विवाह-विज्ञापन देखने लगा। उसमें एक बड़ा मनोरंजक था। उस पर लाल स्याही से किसी ने निशान भी बना दिया था।

"आवश्यकता है, एक वैभवशाली युवक के लिये एक कोमलाङ्गी सुन्दरी युवती की। नृत्य-संगीत का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। भावुक पति को प्रत्येक संभव रीति से प्रसन्न करना होगा। उम्र पन्द्रह-सोलह, अधिक नहीं।"

मैं विज्ञापन पढ़कर वैसी ही कोमलाङ्गी की कल्पना करने में लगा था और ठीक इसी प्रकार का विज्ञापन अपने लिये भी छपाने को सोच रहा था कि फर्श पर ऊँची एड़ी के खटपट से मेरा ध्यान भंग हो गया। मैंने गरदन घुमाकर देखा, तो एक विलायती गुड़िया खड़ी है। मुझे ऐसा जान पड़ा कि पत्र में छपे हुए विज्ञापन को पढ़कर कहीं भूल से मेरे पास तो नहीं चली आयी है। सौन्दर्य और बनावट के मिश्रित प्रभाव से मेरी आँखें चकाचौंध हो रही थीं। कोकिल का अचानक कंठ फूटा—"बहन शेफालिकाजी कहाँ हैं?"

"कहिये क्या काम है?"—मैंने पूछा, और बिना पूछे ही उसकी आँखों का मधु पान करता रहा।

"आप कौन हैं पूछने वाले!"—कुछ रोष-भरे स्वर में बोली।

"मैं हूँ प्रभातकिरण आपकी बहन शेफालिका का अभागा पति!"—मैंने नम्रता से झुकते हुए उत्तर दिया।

"ओह आई एम सॉरी, क्षमा कीजिये, मैं आपको पहचान न सकी।"

"खैर कोई हर्ज नहीं। क्या मैं आपसे बैठने के लिये कह सकता हूँ?"

"थैंक यू" की एक मधु-घूँट पिलाकर वह बैठ गयी। मैं अब भी उसका सौन्दर्य निहार रहा था। वह भी निर्भयता-पूर्वक मेरी आँखों में कोई खोई वस्तु ढूँढ़ती-सी दिखाई दी। कुछ देर शान्ति रही। हम दोनों का कार्य निर्विघ्न क्रम से चलता रहा। अचानक उसने शान्ति-भंग की।

"न जाने क्यों, आपको पाकर भी बहन शेफालिका असंतुष्ट हैं

कहिये न, क्या बात है !"

मैं उत्तर देने ही जा रहा था कि सामने श्रीमती जी आकर खड़ी हो गयीं !

"क्यों मालती, तू यहाँ बैठी गप्पें मार रही है । मैं तुम्हारे घर गई थी । वाह, खूब रही । चल उठ, आज चौकमें जरा 'शॉपिंग' भी करनी है ।"

आँखों-आँखों से ही मुझ से कहा, जिसे मैं समझ न सका ; और मालती का हाथ बगल में दबाकर वह चल दी । मैं, अपनी किस्मत को ठोंकता हुआ वहीं बैठा रहा । घंटों सोचता रहा—'चौककी शॉपिंग', 'नाइट शो सिनेमा', और मेरी नव परिणीता पत्नी बिल्कुल अकेले ! मेरा हृदय सशंकित हुआ । चिंता से मुक्ति पाने के लिए घूमने निकल पड़ा ।

घूम कर लौटा, तो अकेले तबीयत नहीं लगती थी । सुन-सान बंगला काटने दौड़ता था । ग्रामोफोनपर 'कैसे कटे वियोग की घड़ियाँ' वाला रेकार्ड तीन बार लगाकर सुना । उससे भी जी ऊबा, तो दो विरह-गीत लिख डाले । एक सिगरेट जलाकर बिस्तर पर पड़ा गुनगुनाता रहा—

'कैसे कटे वियोग की घड़ियाँ' । एक झपकी-सी आई, और मैं नींद की गोद में था । कुछ देर बाद मुझे जाग्रत अवस्था में ऐसा अनुभव हुआ कि कोई चीज जल रही है । तुरंत उठ बैठा—देखा तो सिगरेट पूरी जलकर ऊँगलियों तक पहुँच रही थी । नींद खुल गई । घड़ी की ओर देखा, तो बारह पर दोनों सूइयाँ आलिंगन किये हुए विश्राम कर रही हैं ! अपने एकाकी-पन से मैं ऊब गया था । जीमें आया कि उठके कहीं बाहर चल दूँ । पर इतने ही में बंगले के भीतर कोई 'कार' आ खड़ी हुई, मैं जी गया । आँखें मूँदकर मैंने सोने का बहाना किया । कुछ देर बाद कोई आकर मेरे पास बिस्तर पर बैठ गया । सिसकने की आवाजके साथ ही मेरे जले हुए हाथोंपर दो गरम बूँदें गिरीं ।

मैंने आँखें खोल दीं। देखा शेफालिका थी। "क्यों, क्या हुआ, रो क्यों रही हो ?" सचमुच वह रो रही थी। मेरे प्रश्न करते ही वह मेरी छाती से चिपक कर फूट-फूट कर रोने लगी। मैंने उसे सान्त्वना दी, कारण पूछा, पर उसके आँसुओं के तार ही नहीं टूटते थे। मैंने जेब से रूमाल निकाल कर उसकी आँखें पोंछीं। धीरे-धीरे वह शान्त हुई। मैं उसकी कहानी सुनने के लिये उत्सुक हो रहा था।

"क्षमा, करिये ! मैंने आपकी उदारता का अनुचित लाभ उठाया, अपनी उसी मूर्खता के कारण मुझे पछताना पड़ रहा है मैं आपकी बात मानती, तो क्यों यह अवसर आता और मुझे शरम उठानी पड़ती ! मैंने अपनी ही बेवकूफी की सजा पाई है।"—उसके परिताप-भरे शब्दों और आँखों की निर्दोष बूँदों में मेरे जैसे भावुक के हृदय को द्रवित करने के लिये काफी शक्ति थी। मैं घबड़ाकर पूछा—आखिर बात क्या हुई ?

मैं आपको पूरा किस्सा सुनाऊँगी—इसीसे मेरे हृदय का भार हलका होगा। "यहाँ से मैं सीधे चौक गयी। वहाँ कुछ शॉपिंग करना चाहा, पर दूकानदार जिस बहूदे ढंग से पेश आये कि बिना कुछ खरीदे ही मैं मालती के साथ पार्क में चली गयी। वहाँ भी कालेज के दो-चार बदमाश छोकरे पीछे लग गये। किसी तरह जान बचाकर सिनेमा पहुँची। वहाँ टिकट-घर पर मुसीबत का सामना करना पड़ा। हम दोनों में से किसी की भी हिम्मत न हुई कि टिकट खरीद लें।"

"एक शरीफ नौजवान ने हमलोगों को टिकट तो ख़रीद दिये, पर जाते वक्त वह मालती के हाथ में टिकट के रुपये रखकर यह कहकर चल दिया कि यह आपकी खूबसूरती की नजर है! मैं तो गुस्से से काँपने लगी, पर कर ही क्या सकती थी! भीतर हॉल में पहुँची। वहाँ भी अगल-बगल तीन-चार शरीफ आदमियों के बीच में पड़ गयी, जिससे जान बच गयी, नहीं तो आफत हो जाती। तो भी मूँगफली के छिलके

और कागज की गोलियाँ फेंकने से कालेज के छोकड़े बाज़ नहीं आते थे। और मालती के पैर का तो एक चप्पल ही किसी ने गायब कर दिया! बिचारी दूसरा चप्पल भी वहीं फेंक कर पैदल ही वापस आयी। पर सबसे बड़ी घटना तो घर लौटते वक्त रास्ते में हुई। टाँगे पर बैठी चली आ रही थी कि अचानक 'सड़क खराब है' कहकर वह एक दूसरे ही रास्ते से ले चला। मेरे लाख कहने पर भी वह न माना। अँधेरी रात सून-सान सड़क, और एकान्त निर्जन स्थान—मुझे तो भय मालूम हो रहा था। मालती तो डरकर मुझसे चिपट गयी थी। टाँगा जब एक सून-सान बगीचे के पास पहुँचा, तो एक अवाज हुई और टाँगा रुक गया। आस-पास से तीन-चार आदमी और निकल आये, टाँगेवाला उन्हीं में मिल गया। यह सब देख मैं मारे डर से चिल्ला उठी। मालती तो मेरी गोद में बेहोश हो गयी। वे सब हमें जबदस्ती टाँगे पर से उतारने ही जा रहे थे कि सामने से एक 'कार' आती देख सब के सब भाग खड़े हुए। मैंने उतरकर 'कार' रुकवाई। उसमें बैठे हुए सज्जन जो किसी क्लब के सभापति और पत्र के सम्पादक भी हैं, अपनी कार में मुझे और मालती को बैठाकर बंगले तक पहुंचा गये हैं। ईश्वर ने उन्हें मेरी सहायता को ठीक वक्त पर भेज दिया; नहीं तो…"

कहते—कहते आँसू फिर फूट पड़े। मैंने अपने रूमाल में मोती इकट्ठा करते हुए कहा—"प्रिये, यह तो स्वाधीनता की पहली सीढ़ी थी, पहला प्रयोग था—कटु अनुभव होना स्वाभाविक ही है। आगे चल कर………" मगर उसने अपनी सुकुमार उंगलियों से मेरा मुँह बँद कर दिया और मेरे अधरों ने आये हुए मेहमान का स्वागत किया।

× × ×

दूसरे दिन प्रातःकाल किन्हीं कोमल करों का स्पर्श पाकर मैंने अपनी अलसाई आँखें खोलीं। देखा तो, एक मुस्कराती हुई प्रतिमा खड़ी है! उस समय सचमुच शेफालिका बड़ी अच्छी लग रही थी। उसके एक

हाथ में कागज का टुकड़ा था और दूसरे हाथ में चाय का प्याला। कागज छीन कर मैंने देखा तो 'नारी स्वाधीनता समिति' के सेक्रेटरी-पद से उसका 'इस्तीफा' था। मैंने उसकी ओर देखा, तो वह शर्म की हँसी हँस रही थी। अपनी झेंप मिटाने के लिए उसने चाय का प्याला मेरे ओठों से लगा दिया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उसी दिन मैंने अपने क्लब के पंचभूतों की प्रसन्नता के लिए क्लार्क होटल में उदरपूर्ति महायज्ञ किया।



स्वयंवर

स्वयंवर-प्रथा कब से चली, इसका कोई इतिहास तो मिलता नहीं, पर मैंने थोड़ी बहुत खोज अवश्य की है जिसे सत्य-असत्य का भेदभाव त्याग कर आप पढ़ सकते हैं।

बात यह है कि पुराने जमाने में स्त्री ही सब खुराफातों की जड़ समझी जाती थी। अधिकतर लड़ाई-झगड़े, खून खराबी आदि किसी खूबसूरत लड़की के पीछे ही हुआ करते थे। आजकल नहीं होते—यह बात नहीं, पर तब की बात और थी। राजा और नवाब बड़ी दिलफेंक तबियत के होते थे। किसी सुन्दरी के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी, कोई सुन्दर-सा चित्र देखा, बस भेज दिया शादी का पैगाम। इनकारी पर लड़ाई का सामान। इन सबसे बचने के लिए ही आला दिमाग और बुद्धिमान मस्तिष्क वालों ने स्वयंवर का आविष्कार किया। लड़की को सर्वेसर्वा बना दिया गया। पति-निर्वाचन का सम्पूर्ण अधिकार उसे ही दे दिया गया। जिसको चाहे चुन ले। न किसी प्रकार की

लड़ाई, न झगड़ा और न जोर-जबर्दस्ती। यदि आप सुन्दर हैं, आकर्षक हैं, बहादुर हैं, सीना चौड़ा है, तथा प्रशस्त हैं तो आप मूछें ऐंठकर शान के साथ बैठ जाइये, वरना टी० बी० के मरीजों तथा पिचके गालवाले 'खूबसूरत' नवजवानों के लिए कोई आशा नहीं। बेचारे बदसूरत तोंदियल सेठों की तो मरण हो गयी। रुपये के जोर से कोहकाफ की परी मँगवाकर अपनी रनवास की पटरानियों का क्रम जारी रखते थे। सड़कों पर लंगूर की सूरत वालों के साथ भी हुस्न की मलका के दर्शन हो जाते थे। पर स्वयंवर ने सब बंटाधार कर दिया। अभी तक धनकुबेर अपने धन का अनुचित लाभ उठाते थे, सौन्दर्य दाम देकर खरीद लाते थे और अपने महलों का शृङ्गार करते थे। पर स्वयंवर प्रथा के प्रारम्भ के साथ इस क्षेत्र में भी साम्यवाद का प्रवेश हो गया। अब कोई सुन्दर युवक चाहे कितना ही गरीब क्यों न हो, थोड़े से रुपये किसी से उधार लेकर अपनी तकदीर आजमा सकता है। शायद कहीं उसकी किस्मत का सितारा चमक जाय।

इतना तो हुआ कि सड़कों पर अब ऐसे जोड़े न दिखाई देंगे कि किसी को शिकायत का मौका मिले। हाँ, यह जरूर कि लड़कियों के दिमाग आसमान में चढ़ जायँगे। फिर खूबसूरत लड़कियाँ तो स्वभावतः खूबसूरत गले में ही जयमाल डालेंगी। अन्धे के हाथ बटेर लगने का मौका शायद ही किसी भाग्यवान को मिले। काले कलूटे, बदसूरत, ठूँठ के ठूँठ ही रह जायेंगे। अपने राम तो कम से कम निश्चिन्त हैं—

'आज सोओगे नहीं?' श्रीमती जी कमरे में अचानक प्रवेश करती हुई बोलीं। उनके स्वर में नाराजी का मिश्रण था।

'बस अभी आया।'

'आग लगे तुम्हारे लेखनी"""।'

अधूरे वाक्य के साथ ही जोरों से दरवाजा बन्द होने की आवाज हुई। श्रीमती जी रूठकर सोने चली गयीं।

मेरी लेखनी चलने लगी। स्वयंवर पर अपना लेख अधूरा कैसे छोड़ सकता था। पर कुछ देर बाद धीरे-धीरे उँगलियाँ शिथिल पड़ने लगीं। आँखें विश्राम ढूँढ़ने लगीं। पुतलियाँ पलकों के कुशन पर पड़े-पड़े झँपने लगीं। लेखनी रुक गयी।

असेम्बली में स्वयवर बिल पेश था। सरकारी प्रस्ताव था इसलिये गैर सरकारी विरोध होना आवश्यक था। विरोधियों में मैं भी एक खास था। पर हम सर पटकते रह गये और बिल बहुमत से पास हो गया। मैंने तो इसे महिला मिनिस्टर का प्रभाव ही समझा।

बिल के पास होते ही 'क्षुद्र नदी बढ़ि चलि उतराई।' महिलाओं में लहर-सी दौड़ गयी। स्थान-स्थान पर स्वयंवरों की आयोजना होने लगी। प्रारंभिक प्रयास तो खूब सफल रहे। बाद में फिर यह साधारण सी बात हो गयी। अपने श्रम के लिए मनोरंजन का एक नया साधन निकल आया। दो-चार सूट और दो एक शेरवानी सिलवा लीं—बस साल भर के लिए छुट्टी। हर एक स्वयंवर का निमंत्रण स्वीकार कर लेता। कोई भी प्रोग्राम 'मिस' नहीं होता था। बेकारी काटने का इससे अच्छा तरीका और क्या हो सकता था?

एक दिन श्रीमतीजी मेरे गले में कुसुमकरों की जयमाल डालते हुए बोलीं—'यदि आप आज्ञा दें तो मैं भी एक स्वयंवर सजाऊँ।'

'पागल तो नहीं हो गयी!'

मैंने आश्चर्य-चकित होकर पूछा। मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं होता था। मैं आँखें फाड़-फाड़कर उनकी ओर देखने लगा। 'क्या सच?'—मेरी आँखों ने भी प्रश्न किया।

'क्या हर्ज है?'

'इसी से तो कहता हूँ कि पागल तो नहीं हो गयी हो। स्वयंवर कुमारियों और बाल-विधवाओं के होते हैं, तुम्हारी जैसी प्रौढ़ा नायिका के लिए नहीं। 'मैं जैसी हूँ वैसी हूँ—कुमारी तो बन नहीं सकती और विधवा

बनना नहीं चाहती। स्वयंवर का सुख कैसे प्राप्त करूँ? मेरी बड़ी इच्छा है कि एक बार अपने घर पर स्वयंवर रचाऊँ।' मुझे श्रीमतीजी का रंग-ढंग देखकर आश्चर्य हो रहा था। 'घबड़ाइये नहीं, मैं आपके ही गले मे जयमाल डालूँगी।' 'जी हाँ, यदि गलती से किसी दूसरे गले में भी गिर पड़े तो अब तलाक का रास्ता भी खुल गया है।'

मैंने व्यंग भरे शब्दों में कहा—'कौन जाने किसी सुन्दर युवक को देखकर दिल फेंक बैठो! तबियत ही तो है! फिर मैं तो बे-मौत मरूँगा।'

'तो क्या मेरे बारे में आपकी यही धारणा है?' श्रीमतीजी ने नाराज होते हुए पूछा।

'नहीं, नहीं, खैर मैं तो मजाक कर रहा था। तुम बुरा मान गयीं क्या?'

'तो अगले रविवार को ही।'

इसके आगे क्या मैं 'हाँ' के सिवा 'ना' कर सकता था, कभी नहीं। इच्छा न रहते हुए भी मुझे अपनी श्रीमतीजी के स्वयंवर का सारा प्रबन्ध स्वयं करना पड़ा। आखिर वह दिन भी आ पहुँचा। बड़े ठाट-बाट से अतिथिगण बगीचे में लान पर इकट्ठे होने लगे। दावत का प्रबंध 'ग्रैंड होटल' को दिया गया था। आध घंटे के अन्दर ही सारे निमंत्रित व्यक्ति आ गये। ठीक समय पर कार्य आरंभ हुआ। कुछ लोगों ने जोर दिया और प्रारंभिक भाषण मुझे ही करना पड़ा। मैं खड़ा हुआ—आखिर कहता क्या? नारी-स्वाधीनता पर अपने विचार प्रकट किये। प्रगतिशील नारियों की पीठ ठोंकी। स्त्रियों को स्वयंवर चुनने का अधिकार देने के लिए नेहरू मिनिस्ट्री की तारीफ की। यद्यपि मेरे अपने विचार ठीक इसके विपरीत थे, पर चूँकि मैं अपनी श्रीमतीजी को स्वतंत्र करके एक आदर्श उपस्थित कर चुका था, इसलिये अपने ही फंदों में आप बँधा पड़ा था।

जलपान के पश्चात् स्वयंवर कार्य प्रारंभ हुआ। अतिथियों की 'सीटें' गोलाकार रूप में लगी हुई थीं। एक कोने की सीट पर मैं भी विराजमान था। श्रीमतीजी उठीं—हाथों में फूलों का गजरा लिये हुए। एक साथ ही सभी मेहमानो की नजर उठी मेरी श्रीमतीजी की ओर। मेरे दिल की हालत उस समय क्या हुई, यह आप से क्या बताऊँ! सभी एकटक लगाकर मेरी देवीजी के सौंदर्य का दर्शन और रूप-मधु का पान कर रहे थे। श्रीमतीजी मंद गति से हंस की चाल चलती हुई आगे बढ़ रही थीं। उनके साथ उनकी बाल-सखी चिरकुमारी नीहार बाला उन्हें सहारा दे रही थी। मेहमानो की संख्या काफी थी और पंक्ति भी काफी लम्बी थी। श्रीमतीजी पाँच-पांच मिनट हर एक के पास रुकती आ रही थीं। उनका यह रुक-रुक कर चलना मुझे विष-सा लग रहा था। मेरे पास पहुँचते-पहुँचते उन्हें पूरे आध घंटे लगे। मैं घबड़ा उठा। खैर, जब वह मेरे पास पहुँचीं तो उनकी एक मुस्कान मात्र ने मेरा सारा कलुष, क्रोध, असन्तोष हरण कर लिया। हृदय को शांति मिली। कहने ही वाला था कि मुझे जयमाल पहना कर झगड़ा खतम करो। पर आसपास बैठे हुए मेहमानों का विचार कर चुप हो रहा। नीहार-बाला ने नियमानुसार मेरा भी परिचय दिया। मैं नीहारबाला की वाक् पटुता पर मुग्ध था। पर यह क्या—श्रीमतीजी को लिये हुए वह फिर मुड़ गयी। मेरी आशाओं पर पानी फिर गया। क्रोध का आवेश भी हुआ; पर विवश था। मेहमानों में नयी जान आ गयी। वह दूसरा फेरा लगा रही थीं। पर इस बार जरा शीघ्रता के साथ।

यह नीहारबाला की ही चालबाजी थी। मैं इसे खूब समझता था। क्योंकि मेरे पास से जब श्रीमतीजी जाने लगीं तो वह घूमकर मेरे हृदय पर मुस्कान का जादू डालती गयी।

श्रीमतीजी की इस मूर्खता पर मुझे बड़े जोरों का गुस्सा आ रहा था, पर सभ्य समाज में बैठे रहने के कारण मुझे प्यास न रहते हुए भी

झुँझलाहट के सोडे के साथ सारा का सारा गुस्सा पी जाना पड़ा। मैं देख रहा था चुपचाप श्रीमतीजी की प्रगति—वह अब भी मुझ से दस गज दूर थीं।

धीरे-धीरे नजदीक आयीं। अब नीहार और विलम्ब करने लगी। वह रुक कर बड़े ध्यान से एक-एक को देखने और हँस-हँसकर बातें करने लगी।

श्रीमतीजी गजरा लिये अपनी मादक चाल से आगे बढ़ रही थीं। आखिर जब वह मुझ से दो गज के फासले पर रह गयीं तो मैंने नीहार को आँख से इशारा किया। मैं आकुल हो उठा था। मेरे इशारे को समझकर नीहार मुस्करायी।

उस समय वह सामने बैठे हुए युवक का परिचय दे रही थी—आप हैं शहर के ज्वाएंटमैजिस्ट्रेट मि० विनय मोहन आई० सी० एस०। इतना सुनते ही श्रीमती जी ने उस सुन्दर युवक के गले में जयमाल डाल दी।

मैं उछल पड़ा—चुप न रह सका मेरे मुख से निकल ही गया 'यह क्या पागलपन!' मेरे हृदय में उस समय सैकड़ों बिच्छुओं ने एक साथ ही डँस-सा दिया।

'सरला, सरला' मैं पुकार रहा था। पर वह तो उस युवक का हाथ पकड़े प्रेमातुर दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी। मुझ से सहन न हुआ। मैं उसकी ओर तेजी से बढ़ा। क्रोध में अन्धा था ही—किसी की टाँग में फँसकर जमीन पर आ गिरा। मुख के बल गिरा—इसलिए स्वभावतः पीठ में कम चोट आयी नाक का सुरता देखने के लिए मैं होश में न रहा।

× × × ×

आँखें खोलीं तो देखा श्रीमतीजी गोद में मेरा सर रखे हुए सहला रही हैं। मैं पलंग से जमीन पर आ पड़ा था।

'सब मेहमान गये!'

'कैसे मेहमान ?'

'अरे वही जो तुम्हारे स्वयंवर में आये थे। विनयमोहन को भी भूल गयीं ?'

'होश में आओ पागल तो नहीं हो गये ?'

इतने में हवा का जो झोंका आया तो पलंग से कागज का पन्ना उड़कर श्रीमतीजी के पास आ गिरा। उन्होंने और मैंने भी देखा उसपर लिखा था—'स्वयंवर प्रथा का इतिहास।' मेरे लाख मना करने पर भी उन्होंने उस कागज के टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

अब तक मैं होश में आ गया था। मुझे बड़ा दुःख हुआ। मेरा इतना 'रिसर्च' और परिश्रम व्यर्थ गया। अब मुझमें तो हिम्मत नहीं कि दुबारा खोज करूँ। आप में से कोई इस कार्य को हाथ में उठावे तो मैं पूरा सहयोग दूँगा।

चाय चक्रम



मेरे परम मित्र मुंशी जयहिंद लाल ने जब 'चाय चक्रम' मुझे 'चाय' पर भाषण देने के लिए आमंत्रित किया तो पहले मुझे संदेह हुआ कि मुंशी जी चाय प्रचार विभाग के वेतन रजिस्टर पर तो नहीं चढ़ गये हैं। पर द्वितीय विचार ने मेरी शंका निर्मूल कर दी। मुंशी जी इतने नीचे नहीं गिर सकते। खानदानी खून का लिहाज भी तो कोई चीज है। लगातार ग्यारह पुश्तों की रईसी की परंपराएँ, मर्यादाएँ, मुंशी जी नहीं लाँघ सकते। मुंशी जी खानदानी रईस हैं। कर्ज से लदे रहने पर भी मुंशी जी ने कभी कोई रोजगार नहीं किया—नौकरी के लिए तो खान-दान के आदि पुरुष पहले ही मना कर गये थे।

हाँ, तो चाय चक्रम आपकी रईसी बैठक है, चार निठल्लू मित्र जहाँ संध्या के अव-काश का सदुपयोग करते हैं। चाय चक्रम के चार प्रमुख सदस्य हैं—लाला मक्खनदास, बाबू चिरौंजी लाल, ठाकुर राम उजागर

सिंह और नवाब नफासत हुसेन। पाँचवें मुंशी जयहिंद लाल स्थायी मेजबान और चक्रम की धुरी हैं।

मुंशी जी को जब मैंने फोन पर स्वीकृति प्रदान की तो मुंशी जी उछल पड़े—यह बात उनके टेलीफोन रिसीवर पटकने की आवाज से मालूम हुई। भाषण देना था—चाय पर—वह भी चाय चक्रम में—कोई विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं थी। शाम को समय पर मुंशी जयहिंद लाल के ड्राइंग-रूम में पहुँचा। मेरी बड़ी आवभगत हुई। मैंने देखा, प्रमुख सदस्यों के अतिरिक्त कुछ चेहरे विशेष रूप से आमंत्रित हैं। एकाध बुरके, दो एक साड़ियाँ भी दिखाई पड़ीं। इस पर मैंने मुँशी जी को टोंका तो बोले भाई क्या करें कोमलांगियों के लिए परम्पराएँ तोड़नी पड़ीं। इनमें से एक नवाब साहब की साली हैं। उन्हें कैसे मना किया जा सकता था और शेष तीन महिलाएँ आपका नाम सुन कर आयी हैं। मैं चुप रह गया। मुंशी जयहिंद लाल ने नौकर को आवाज दी। प्याले खनखनाये—चाय का पहला दौर चला और मुंशी जी हाथ में चाय की १०० साल पुरानी प्याली लिए खड़े हुए।

'सज्जनों आपकी ओर से मैं आज शाम के अतिथि से अनुरोध करूँगा कि वह चाय की महत्ता पर विद्वत्तापूर्ण भाषण करें।'

'हियर हियर' और तालियों की गड़गड़ाहट और कोमलांगियों की हथेलियों की मधुर थपकी और चूड़ियों की खनखनाहट के बीच मैं खड़ा हुआ। मैंने सभा का एक विहंगावलोकन किया। सभा रोमांचित हुई—महिलाएँ सिहर उठीं।

'चाय चक्र के चरखे और चरखियों! आपने मुझे चाय पिला कर जो सम्मान प्रदान किया है उसका बदला मैं भाषण देकर चुकाना चाहता हूँ। लार्ड लिप्टन और लेडी ब्रुकबांड की आत्मा से अनुमति लेकर तथा चाय की पहली प्याली का निर्माण करने वाली चीनी मजदूर बाला की स्मृति में चाय के दो बूँद चढ़ा कर, आपके चक्रम की सुप्रसिद्ध

सुस्वादु चाय की एक घूँट गले में उतार कर आज मैं चाय पर चार शब्द कहना चाहता हूँ। चाय एक मधुर पेय है। चाय का स्वाद सौगुना हो जाता है यदि सुनहरे रंग वाली कोई सुंदरी 'सर्व' करे। मुंशी जयहिंद लाल के स्थान पर यदि यही चाय नवाब नफासत हुसैन की साली साहिबा तैयार करतीं तो ज्यादा मजा आता।

'हियर हियर' के शोर गुल के बीच कुछ कानाफूसी हुई और नवाब साहब को कहना पड़ा—'मुझे कोई एतराज नहीं।' बुरके के भीतर एक हलका कंपन हुआ, पहले एक हिचक—फिर तीव्रगति से नवाब साहब की साली साहिबा ने उठ कर चाय का दूसरा दौर शुरू किया। मेरा भाषण रुक गया था। सदस्य रोमांचित हो उठे। नवाब नफासत हुसैन की बाछें खिल उठीं।

मैंने अपना भाषण शुरु किया—हाँ तो सज्जनों! चाय का चक्र बिना महिलाओं की सहायता के नहीं चल सकता। दूसरे दौर की चाय में आप ज्यादा मिठास पाइयेगा। इस चाय से होटल रेस्टराँ की चाय क्या बराबरी करेंगे? जमीन आसमान का फर्क है जनाब। वही दूध वही चीनी और वही खौलता हुआ गरम पानी—पर एक खूबसूरत हाथ इस में मिश्री घोल देता है।'

'हियर हियर, वाह वाह' की धूम के बीच नवाब साहब खड़े होकर बोल उठे—

'गुस्ताखी माफ हो। मैं जानना चाहता हूँ कि आप चाय पर भाषण कर रहे हैं या मेरी खूबसूरत साली पर।'

'नवाब साहब आप ज्यादती करते हैं। मैं चाय पर कुछ कह रहा था न कि आपकी साली पर आपकी साली साहिबा परदे में हैं। जब तक मैं देख न लूँ तब तक नहीं कह सकता कि वह खूबसूरत भी हैं। नवाब नफासत हुसैन से ठाकुर राम उजबक सिंह की पुरानी लाग-डाँट थी। ठाकुर साहब कैसे मौका चूकते।

'सज्जनों ! चाय चक्रम में कोई चीज परदे में नहीं रह सकती। हम किसी विषय पर खुले रूप से विचार करते हैं।'

नवाब साहब ने मूंछों पर ताव दिया बोले—'एक मेहमान को बुला कर इस तरह बेइज्जत नहीं करना चाहिये।'

मुंशी जयहिंद लाल ने हस्तक्षेप किया। 'जनाब चाय चक्रम लोकतांत्रिक संस्था है। प्रत्येक गुत्थी यहाँ बैलट से सुलझाई जाती है। इस प्रश्न पर भी मत लिये जायँगे—पर बैठक के अंत में।' सब ने सुझाव मान लिया।

मैंने भाषण शुरू किया—'तो सज्जनों ! मैं कह रहा था—चाय मधुर पेय है। इसका माधुर्य कोमलांगियों के स्पर्श से बढ़ जाता है। इसीलिये चाय चक्रम चाय गोष्ठी में महिलाओं की उपस्थिति अनिवार्य होनी चाहिये। मुझे हर्ष है कि चाय चक्रम के चतुर चक्रकार मुंशी जयहिंद लाल ने चक्रम की 'केवल पुरुषों के लिए' की परंपरा तोड़ दी और हम इस बार चक्रम का वातावरण स्नो पाउडर और लवेंडर मिश्रित सुगंधि से सुवासित पाते हैं। चाय का रंग ऐसे ही वातावरण से खिलता है। खेद है कि सौंदर्य को परदे में रखने की पुरानी परंपरा को अब भी जिलाये जा रहे हैं पर जनाब सौंदर्य, गुलाब का फूल, चाँद की चाँदनी रात की रानी, लवेंडर की शीशी छुपाकर परदे में रखने की चीज नहीं है।'

'हियर हियर' के शोर के कारण मुझे दो मिनट रुकना पड़ा। मैंने देखा नवाब साहब फिर उठ खड़े हुए—'गुस्ताखी' माफ हो। मैं आपकी बातों का कायल हूँ। ज्यादा शर्मिंदा न करें। परदा उठ जायगा।

बाबू चिरौंजी लाल ने जो अभी तक बुद्ध-प्रतिमा बने बैठे थे अपनी पगड़ी उछाल दी। बाद में पता चला कि उनके बगल में बैठे मित्र लाला मखूल दास की शरारत थी। इस पगड़ी उछालने की क्रिया में. राम उजागर सिंह का सिगार छूटकर एक महिला की गोद गया। महिला चीख उठी। मुंशी जयहिंद लाल ने चौंककर

आग बुझायी। महिला की साड़ी में एक छोटा-सा सूराख हो गया, नयी साड़ी में सूराख देखते ही देवीजी की आत्मा रो उठी।

नवाब साहब से न रहा गया—

'लोगों को बीड़ी पीने की तमीज नहीं तो सिगार क्यों पीते हैं ?'

'नवाब साहब, कीचड़ उछालना बंद करिये, वरना !'

'आप जलती सिगार उछालना तो बंद करिये।'

'आपकी बेगम की सलवार तो नहीं जली ?'

'जबान सँभाल कर बात करिये ठाकुर साहब। आप एक महिला का अपमान कर रहे हैं।'

बुरके में से नवाब साहब की साली ने गुस्से में कहा—

'मरदों की बैठक में शरीफ औरतों का शामिल होना ही गुनाह है। उठो बहनो चलें।'

मुंशी जयहिंद लाल दौड़े गये रास्ता रोककर खड़े हो गये। 'यह मेरा अपमान है। मैं माफी माँगता हूँ। आप लोग बैठी रहें। चाय चक्रम का शिष्टाचार भंग करने के लिए ठाकुर साहब और पगड़ी उछालने वाले बाबू चिरौंजी लाल दोषी हैं। इनके ऊपर अगली दो बैठकों का खर्चा जुर्माने के रूप में वसूल किया जायगा। साड़ी की क्षति-पूर्ति भी ठाकुर साहब करेंगे।'

सदस्यों ने मुंशी जी का निर्णय शिरोधार्य किया। साड़ी के व्यवसायी लाला मलूकदास ने ठाकुर साहब के बदले अपनी दूकान से मुफ्त साड़ी देने का वादा किया। इस प्रकार एक कटु प्रसंग समाप्त हुआ और भाषण शुरू हुआ।

'सज्जनो! महिलाओं की उपस्थिति से पुरुषों में संयम, शिष्टाचार का भाव बना रहता है। झगड़े सरलता से सुलझ जाते हैं— यह तो आपने देख लिया। इसलिए मेरा तो सुझाव है कि आप लोग चाय चक्रम की सदस्यता का द्वार महिलाओं के लिए खोल दें।'

उपस्थित चारों महिलाओं ने हथेलियाँ बजायीं और एक स्वर से बोलीं--'हम सदस्य बनने को तैयार हैं ।'

'पर मैं चाहूँगा कि चाय चक्रम के सदस्य पहले अपनी पत्नियों को सदस्य बनावें । शेष महिलाएँ, बाद में प्रवेश पा सकती हैं ।'

मेरी बात सुनते ही उपस्थित महिलाओं का मुँह उतर गया । नवाब साहब ने खिल कर कहा-'सज्जनों ! मैं अपनी बेगम का नाम खुशी-खुशी पेश करता हूँ ।'

'और साली का'—बाबू चिरौंजी लाल ने धीरे से पूछा । पर नवाब साहब चुप रह गये ।

मुंशी जयहिंद लाल ने एतराज किया--जनाब नवाब साहब आपकी बेगम साहिबा को सदस्य बनने के लिए खुद आकर दर्खास्त करनी होगी । आज हम आपकी साली साहिबा को मेम्बर बना सकते हैं ।'

ठाकुर ने लाला मलूक दास के कान में धीरे से कहा—लो मुंशी को देखो, इनकी भी साली पर नजर है ।

इतने में नवाब नफासत हुसेन का इशारा हुआ तो बुरका उठ गया और बाहर निकल आयीं बेगम नफासत हुसेन । 'मैं आदाब करती हूँ । बहुत दिनों से चक्रम की बैठक में शामिल होने की ख्वाहिश थी । आज चोरी से आयी भी तो आपने दरवाजा ही खोल दिया । मुझे चाय चक्रम का सदस्य बना लीजिये ।'

मुंशी जयहिंद लाल ने खड़े होकर पूछा—'किसी को एतराज तो नहीं । ठाकुर साहब ने खड़े होकर कहा—है । पहला एतराज यह है कि चुनाव बैलट से होना चाहिये । दूसरा यह कि नवाब साहब ने साली की जगह बेगम को बुला कर सदस्यों को धोखा दिया । इसके लिए चक्रम की एक बैठक का खर्च नवाब साहब से जुर्माने में वसूल किया जाय ।'

'ठाकुर साहब की बात मैं मान लेता हूँ। साली को बेगम के बुरके में घुमाने का गुनहगार हूँ मैं।' नवाब साहब को माफ कर दिया गया और बेगम को सदस्य बना लिया गया।

मेरा भाषण अधूरा रह गया, वह चक्रम की अगली बैठक के लिए स्थगित कर दिया गया। चाय की तीसरी दौर बेगम नफासत हुसेन ने शुरू की। तालियों की गड़गड़ाहट और हथेलियों की थपथपाहट और चूड़ियों की खनखनाहट के बीच चाय चक्रम की बैठक समाप्त हुई।



मियाँ बकरीदी पाकिस्तान चले

मियाँ बकरीदी मेरे पड़ोसी हैं, इसलिए उनके ऊपर लिखने का एकाधिकार मुझे प्राप्त है। आज जब मियाँ बकरीदी बाप-दादों का मकान और अपना पुश्तैनी मुहल्ला छोड़-कर पाकिस्तान जा रहे हैं तो उनके प्रति श्रद्धांजलि प्रकट कर मैं एक पड़ोसी का ही कर्त्तव्य पालन कर रहा हूँ।

मुहल्ले में मियाँ बकरीदी का मकान ऐति-हासिक महत्त्व रखता है। जहाँ तक खोज की जा सकी है, सात पुश्तों तक मकान की मरम्मत नहीं हुई है। सात पुश्त में सात दीवारें गिरने पर भी इमारत खण्डहर नहीं हुई है—मियाँ बकरीदी को इस बात का गर्व है। मेरी बैठक में जिस दिन खमीरे के तम्बाकू के धुएँ में मियाँ बकरीदी अतीत के धुँधले स्वप्न देखते तो उनका संस्मरण फिसाने अंजायब का रूप धारण करता और उनकी इमारत के तहखानों के किस्से देवकी-नन्दन खत्री के तिलिस्मों के वर्णन को मात कर देते। मियाँ बकरीदी के किस्सों का काफिला.तब

समाप्त होता जब मेरा नौकर बैठक से खमीरे तम्बाकू का डिब्बा हटा देता था बगल के मकान से मियाँ बकरीदी की बुलाहट के लिए बेगम बकरीदी की चिल्लाहट शुरू होती। मियाँ बकरीदी दुनियाँ में केवल दो चीजों से डरते थे। एक तो मौत से, दूसरे अपनी बेगम से।

मियाँ बकरीदी का जन्म मियाँ जिन्ना के हिन्दुस्तान की नापाक जमीन पर कदम धरने के बहुत पहले हो चुका था। इसलिए मियाँ बकरीदी कायदेआजम जिन्ना को अपना नेता नहीं मानते, लेकिन उनकी बात जरूर मानते थे। जिन्ना के बाद यदि किसी की बातों की कीमत समझते थे तो वह सौभाग्य मुझे प्राप्त था। घरेलू संकटों में वह अक्सर मेरी कीमती सलाह लेने आया करते थे।

मियाँ बकरीदी कट्टर मुस्लिम लीगी तो नहीं थे। पर मुस्लिम लीगियों से भी कट्टर उनके विचार थे। कायदे आजम ने जब 'डाइरेक्ट एक्शन' का आंदोलन चलाया तो पड़ोस की मस्जिद में बड़ी जबर्दस्त तकरीरें हुई। दूसरे दिन मियाँ बकरीदी सुबह-सुबह ही चबूतरे पर चिंतित खड़े दिखायी दिये। बोले—'बहुत दिनों से शान देनेवाला नहीं दिखलाई दिया,। कहाँ मिलेगा ?'

'क्यों, क्या बात है ?'

'जरा साग चीरने की हँसिया की धार भोथरी हो गयी है।'

शाम को देखा तो मियाँ बकरीदी के साथ एक लड़का शान धरने की मशीन कंधे पर रखे मकान के अन्दर जा रहा था। मुझे कौतूहल हुआ। बाहर लौटने पर मैंने शान धरनेवाले से पूछा—'क्यों बे कितने पैसे मिले ?'

'पैसे क्या देगा बाबू जी, चार तलवार, आठ छुरियों की शान धराई दस पैसे मिले।' मैं सन्न रह गया। मियाँ बकरीदी 'डाइरेक्ट एक्शन' की तैयारी कर रहे थे।

शाम को मियाँ बकरीदी बैठक से आये तो मुझसे न रह गया। पूछ ही बैठा, 'मिर्जा साहब ! शान धरा लिया ?'

'हाँ भाई '

'पर शान धरने वाला अन्दर परदे में गया था ?'

'जानते ही हो बेगम को बाहर का काम नहीं पसन्द आता, अपने सामने देखना चाहती थीं।'

'अच्छा ! मैंने तो समझा शायद बेगम साहिबा की जबान पर शान धरने की जरूरत पड़ गयी हो।'

'नहीं भाई, उस पर तो खुदा ने ही शान धर कर भेज दिया है।'

मियाँ बकरीदी ने कायदे आजम के जन्म दिवस पर जब मकान में रोशनी की और इमारत के कंगूरों पर कंडीलें लटकायीं तो महल्ले वालों ने मियाँ बकरीदी को घेर कर पूछा—

'क्या बात है ?'

मियाँ बकरीदी ने जवाब दिया—

'भाई, आज मेरी बेगम की वर्षगाँठ है।'

मैंने सुना तो मियाँ बकरीदी को बधाई दी। 'मुबारक हो मिर्जा साहब ! बस शहनाई की कमी है। मैंने तो समझा लड़का पैदा हुआ है।'

'क्यों लावल्द पर ताने कसते हो यार !'

मियाँ बकरीदी खिलाफत में एक रात के लिए जेल हो आये थे, इसलिए अपने को सत्याग्रही बताकर कॉंग्रेसी एम. एल. ए. के घर से चीनी और कपड़े के परमिट ले आते थे। मियाँ बकरीदी के इस 'सत्याग्रही रूप' की मैंने कभी आलोचना नहीं की। कारण, परमिटों में से कुछ का उपयोग मैंने भी किया है। खुद कोशिश करने पर भी वे परमिटें नहीं प्राप्त कर सकता था, इसलिए भी मियाँ बकरीदी का एहसान मानना ही पड़ेगा। मुझे जब कभी नमक, चीनी, सीमेंट या वनस्पती के परमिट की आवश्यकता होती तो रात की बैठक में मियाँ बकरीदी से खिलाफत

के दिनों की चरचा छेड़ देती। दूसरे दिन सुबह ही परमिट मेरे घर पहुँच जाते। मियाँ बकरीदी की आवश्यकतानुसार लीगी और राष्ट्रीय मुसलमान का रोल अदा करने की असाधारण योग्यता पर मुझे आश्चर्य था।

एक दिन खबर लगी कि मियाँ बकरीदी अपना मकान बेच रहे हैं। मुझे आश्चर्य हुआ। एक बार मकान की एक ईंट एक आदमी ने निकाल ली थी। उसके लिए हफ्तों मियाँ बकरीदी ने वाग्युद्ध किया, 'डाइरेक्ट एक्शन' की धमकी दी। मियाँ बकरीदी का मस्तिष्क और महल्ले की शान्ति भंग होने की आशंका देखकर मैंने एक दूसरी ईंट रखवा दी। मामला खतम हो गया। शाम की बैठक में मियाँ बकरीदी ने बताया—'भाई, मुझे अपने मकान की एक-एक ईंट से मुहब्बत है। बाप-दादों के हाथ डाली गयी नींव की ईंटों को मैं फेंक दूँ, हो नहीं सकता। इसीलिए मेरे सात पुश्त में आज तक किसी ने मरम्मत नहीं करायी।'

मियाँ बकरीदी के पुश्तैनी मकान के प्रेम को मैं जानता था। मकान बिकने की खबर सुनकर पहले तो मुझे विश्वास नहीं हुआ, पर कभी-कभी अविश्वसनीय बातों पर भी विश्वास करना पड़ता है। बात सच थी—मियाँ बकरीदी ने पाकिस्तान जाने का निश्चय किया था।

मियाँ बकरीदी पाकिस्तान जा रहे हैं और अपना मकान बेच रहे हैं। यह बात फैल गयी। मुहल्ले भर में शोर मच गया। चौराहे-चौराहे पान की दूकानों पर, निठल्लुओं की बैठक में इसकी चरचा होने लगी। मकान के दाम लगने शुरू हुए। मियाँ बकरीदी की 'सरकारी बोली' थी—एक लाख। खण्डहर की कीमत एक लाख जो सुनता कानों पर हाथ धर लेता। होनेवाले खरीददार कहते—एक हजार भी मुश्किल से मिलेगा। पर मियाँ बकरीदी का कहना था कि एक हजार की तो एक-एक ईंट है। फिर मकान का ऐतिहासिक महत्व है। इसमें सात पुश्तों तक नवाब रहे हैं। गँवार मुहल्ले वाले भला इसकी कीमत क्या समझेंगे। अगले तीन पुश्तों एक मकान में रहनेवालों पर

नवाबी असर रहेगा। मकान पर खानदानी फरिश्तों का साया रहता है। इसलिए मकान मालिक पर कभी कोई आफत मुसीबत नहीं आयेगी। मकान में कहीं बहुत बड़ा नवाबी खजाना भी छिपा है। मियाँ बकरीदी के दादा ने खजाने की तलाश में एक बार इमारत की नींव तक खोद डाली थी, पर कुछ हाथ नहीं लगा। रात को फरिश्ते ख्वाब में कह गये कि खजाना तुम्हारे भाग्य में नहीं है। मियाँ बकरीदी ने भी कोई कोशिश उठा नहीं रखी, पर जिन्नातों ने आकर डाँटा 'खजाना तुम्हें नहीं मिल सकता।' बहुत सम्भव है कि खरीदनेवाले की किस्मत जग जाय और नवाबी खजाना उसके हाथ लग जाय। रात की पैठक में मेरे यहाँ जब मियाँ बकरीदी अपनी कनवैसिंग समाप्त करते तो सुननेवालों पर काफी अच्छा प्रभाव शेष रहता। मैं भी सोचने लगता कि मियाँ बकरीदी के खण्डहर में ही शायद कहीं अलादीन का चिराग भी न छिपा हो।

वाग्निपुण, कनवासिंग-कुशल मियाँ बकरीदी के बारे में मेरा खयाल है कि वे एक अनुभवी सेल्समैन हैं। मकान बेचने का तो पहला मौका है, पर मुर्गियाँ और बकरियाँ बेचकर मियाँ बकरीदी ने काफी अनुभव प्राप्त किया है। बाप-दादों के खरीदे हुए फालतू बेकार सामान, झाड़ फानूस, शृंगारदान, आदमकद शीशे आदि बेचने में मियाँ बकरीदी ने जो वाक्चातुरी दिखायी कि गुदड़ीवाले खरीददार भी मिर्जा साहब का लोहा मान गये। मियाँ बकरीदी को ग्राहक मनोविज्ञान, अनिच्छुक ग्राहकों को भी प्रभावित करने, अवसर से लाभ उठाने, प्रचार एवं प्रशंसा द्वारा अपनी चीजों की कीमत बढ़ाने की कला का अच्छा ज्ञान था। मियाँ बकरीदी की असाधारण योग्यता और गुणों का पता ह्वाइट वेडला वालों को लगता तो मिर्जा साहब को अच्छे वेतन पर अपने यहाँ बुलाकर सेल्समैन नियुक्त कर देते।

मियाँ बकरीदी के जीवन में खरीद फरोख्त का परिच्छेद एक बकरी से आरम्भ होता है। इसी सिलसिले में मियाँ बकरीदी के नामकरण

का किस्सा भी बता दूँ। मियाँ बकरीदी का असली नाम मिर्जा तलफ़्फ़ुज हुसेन था, पर एक बकरी की मुहब्बत में बदनाम होने से मुहल्लेवालों ने आपका नाम मियाँ बकरीदी रख दिया। कुछ दिनों तक तो आप अपने नये नाम से चिढ़े, पर मेरे समझाने से मुहल्लेवालों द्वारा दिये नये सम्मानपूर्ण उपाधि एवं नाम को स्वीकार कर लिया। बात यह थी कि मियाँ बकरीदी के पास एक जमनापारी, लम्बे कानों वाली खूबसूरत बकरी थी। मिर्जा साहब को इस गरीब जानवर से बड़ी मुहब्बत हो गयी। मिर्जा साहब उसे चौबीसों घण्टे अपने साथ रखते, उसे अपने साथ पार्क में घुमाने ले जाते, अपने हाथों से घास करते और हरी-हरी चुन-चुन कर देते; कभी-कभी किशमिश और पिश्ता भी खिलाते। मिर्जा साहब की बकरी मुहल्ले में प्रसिद्ध थी। पूरे ध सेर दूध देती थी। मियाँ बकरीदी अपने हाथों दुहते थे—और समूचा दूध उदरस्थ कर जाते थे। इस बकरी पर मुहल्ले वालों की आँख थी। इसलिए मिर्जा साहब बहुत सावधान रहते थे। फिर भी एक दिन बकरी गायब हो ही गयी। मुहल्ले वाले बड़े खुश थे। मिर्जासाहब बेचैन थे। एक दिन बीता, दो दिन बीते पर बकरी नहीं लौटी। मुहल्लेवाले गालियाँ सुन रहे थे पर बकरी का पता नहीं बता रहे थे। आखिर मिर्जा साहब ने अनशन कर प्राणत्याग करने की धमकी दी। गुस्से से लाल होकर कहा—मरने के बाद जिन बनकर मुहल्ले को साफ कर दूँगा, पर मुहल्लेवाले टस से मस न हुए। मियाँ बकरीदी के अनशन के दूसरे दिन मैंने बकरी का पता लगाया। शहर के बाहर 'कानीहौद' में थी। चार आने पैसे देकर छुड़वाया। बकरी घर लौटी तो मियाँ बकरीदी ने नीबू के शर्बत से अपना अनशन भंग किया। मिर्जा साहब को बाद में यह बकरी बेच ही देनी पड़ी। मुहल्लेवालों ने नाकों में दम कर दिया। पहले तो महीने दो महीने में एक बार लापता होती थी, पर बाद में प्रति सप्ताह गायब होने लगी। आजिज आकर मिर्जा साहब ने मुहल्ले के उसी आदमी के हाथ, जो बकरी गायब करने के षड़यन्त्र का मुखिया था, बकरी बेच दी। इस

बकरी के पीछे एक बार गृह युद्ध तक हो चुका था। बेगम ने उसकी अपनी 'सौत' से तुलना की थी, और उसे बेचने के लिए खाना-पीना तक छोड़ दिया था। पर मियाँ बकरीदी को शायद बेगम से ज्यादा बकरी से मुहब्बत थी। और जब एक दिन बिना कहे सुने ही मियाँ बकरीदी ने बकरी बेची तो सब से पहले बेगम ने खुले दिल से मुहल्ले वालों को धन्यवाद दिया।

मियाँ बकरीदी ने बकरी बेचने के कुछ दिनों बाद मुर्गियाँ खरीदीं। जीवन में पहली बार रोजगार किया—अण्डे बेचना शुरू किया। पर मुहल्लेवाले कब चुप बैठते। आये दिन मुर्गियाँ गायब हो जातीं। बकरी तो ढूँढ़-खोज करने पर मिल जाती थी, पर मुर्गे मुहल्लेवालों के पेट में पहुँचने लगे। फिर मियाँ बकरीदी के नाम के साथ एक नया विशेषण भी जुट गया—'मुर्गी वाला।' नवाब खानदान के एक इज्जतदार आदमी को यह विशेषण कैसे पसन्द आ सकता था! लोग मियाँ बकरीदी के पास आकर तरह-तरह के ऊलजलूल प्रश्न करते—'आपकी मुर्गी एक साथ कितने अण्डे देती है?' अण्डे सेने के लिए कितनी डिग्री की गर्मी चाहिये।' कोई कहता—'मुझे ताजे अण्डे चाहिये, मेरे सामने निकालिये।' कोई कहता—'मैंने सुना है' आप मुर्गी के अण्डे से खरगोश का बच्चा पैदा करते हैं—जरा दिखाइये।' इन प्रश्नों का उत्तर देना मियाँ बकरीदी के मस्तिष्क के वश के बाहर की बात थी। लाचार मियाँ बकरीदी ने अण्डों का रोजगार बन्द कर दिया और मुर्गियाँ निकाल डालीं। मुर्गियाँ लड़ाई के पहले खरीदी गयी थीं और लड़ाई के बाद बिकीं—इसलिए मियाँ बकरीदी को काफी अच्छा फायदा हो गया।

अब मियाँ बकरीदी के सामने मकान बेचने का प्रश्न था। चाहते थे अच्छा से अच्छा दाम लगे। प्रचार शुरू हो गया था। लखनऊ में खजाना मिलने की बात भी काफी फैल चुकी थी। जमीन काफी थी, पर कोई १२—१४ हजार से आगे नहीं बढ़ता था। इधर मियाँ बकरीदी एक

लाख से ७५ हजार तक ही उतरे थे। बेचनेवाले और खरीदार में कोई समझौता नहीं हो सका। मैंने एक दिन मियाँ साहब को सलाह दी-'मिर्जा साहब ! मकान बेचकर क्या कीजियेगा ? भला कोई बाप-दादों का मकान बेचता है ! आप पाकिस्तान जाइये। मरने पर अपनी हड्डियाँ भिजवा दीजियेगा। मैं इसी में दफन कर आपके नाम पर मकबरा बनवा दूँगा। आपका नाम भी चलेगा और आपकी रूह भी खुश हो जायगी।' पर शायद मेरी सलाह मियाँ बकरीदी को पसन्द नहीं आयी; क्योंकि दूसरे दिन मुझे मालूम हुआ कि मियाँ साहब ने अपना मकान सेठ सुहागमल के यहाँ गिरो रख दिया है।

पाकिस्तान जाने के पहले मियाँ बकरीदी मुझसे मिलने आये। बोले—'जीता रहूँगा तो फिर मिलूँगा।' और रूमाल से आँसू पोंछते हुए सामान से लदी हुई बैलगाड़ी पर जा बैठे। पीछे-पीछे एक पालकी बेगम को लिए हुए स्टेशन जा रही थी।

मियाँ बकरीदी मेरी बैठक के नव-रत्नों में से एक थे, इसलिए उनके जाने का मुझे बड़ा अफसोस हो रहा है।



बटन

आज सिनेमा देखने का इरादा हुआ। पर कुरते के बटन टूटे हुये थे। श्रीमती जी बटन टाँक रही थीं। मैं बटन पर कहानी लिखने की सोच रहा था। पर इसके लिए थोड़े 'रिसर्च' की जरूरत थी। मस्तिष्क ने साथ दिया। मैं 'कौमन-सेन्स' की सर्चलाइट लिये बटन की 'पुनखोंज' (रिसर्च) करने निकल पड़ा।

बटन का इतिहास कोई विशेष पुराना नहीं है। सभ्यता के आरम्भिक काल में बटन का नामो-निशान तक नहीं था। बिना बटन के काम चलता था। ऐसे कपड़े पहने जाते थे, जिनमें बटन टाँकने की जरूरत ही न पड़ती थी। कमर के ऊपरी भाग के लिए दुपट्टे तथा नीचे के भाग के लिए धोती, पीताम्बर आदि। बस, यही कपड़े थे। यह महाभारतीय हिन्दू काल था।

सच पूछिये तो बटन का आविष्कार बहुत दिनों बाद कला-प्रिय मुगलों के जमाने में हुआ। वह भी रूपसी नूरजहाँ की एक दासी के द्वारा। बटन के आविष्कार की कहानी भारत के बड़े-बड़े

इतिहासज्ञों को भी नहीं मालूम ! यदि आप अपनी अनभिज्ञता प्रकट करें, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। उत्सुक पाठिकाएँ धैर्यपूर्वक सुनें।

एक दिन की बात थी। बादशाह सलामत के आने में थोड़ी देर थी। नूरजहाँ शृंगार-घर में थीं। दासियाँ रूपसी का शृंगार करने में व्यस्त थीं। आज के लिए खास एक बसंती रंग की चोली चुन ली गयी थी। केश-रचना समाप्त होने पर चोली की माँग हुई। नूरजहाँ ने एक हसरत भरी निगाह चोली पर डाली। दासियों ने तारीफ के पुल बाँध दिये। बेगम बसंती रंग की चोली पहनकर फूल उठी। जैसे किसी वाटिका पर बसन्त ने कब्जा जमा लिया हो, या बेगम के गोरे बदन पर सौन्दर्य की एक परत और जम गई हो ! बेगम अब वासंतिक सुषमा बिखेर रही थीं। नाज से आइने में अपनी खूबसूरती देख वह अपने आप ही मुस्करा उठीं।

'देर क्यों हो रही है ?'—नूरजहाँ ने विलम्ब होते देख पूछा।

'बेगम-बीबी, चोली में बंधन तो हैं ही नहीं ?'—दर्जी की शामत आई जान सब चुप हो गईं। पर उनमें दर्जी की एक प्रेमिका भी थी। वह कैसे चुप रह सकती थी ! और थी भी वह बड़ी चालाक। नाम था बिट्टन। बोली—'घबराइये नहीं सरकार, अभी ठीक किये देती हूँ।' उसने फौरन अपने कान से सोने का फूल निकालकर चोली में टाँक दिया। काम चल गया। नूरजहाँ की खुशी का ठिकाना न रहा। उसने बिट्टन को गले लगा लिया और बोली—'आज से मेरी चोलियों में सोने के फूल टँका करेंगे। इनका नाम होगा बिट्टन। क्यों खुश हो न ? कहकर उसने बिट्टन के कपोलों का गुलाबी भाग चुटकियों से मसल दिया। बिट्टन का नाम सदा के लिये अमर हो गया।

उसी समय से इसका उपयोग होने लगा। धीरे-धीरे प्रचार बढ़ा। 'बिट्टन' भी लोगों की जबान पर घिसते-फिसलते 'बटन' बन गया। राजा के महलों से लेकर झोपड़ियों तक इसका प्रवेश हो गया।

नूरजहाँ के बाद औरंगजेब के समय तक काफी प्रचार रहा। पर

औरंगजेब को बटन से कुछ खास चिढ़-सी थी। झक ही तो है। दस बार मस्जिद में नमाज पढ़नेवाला इन कला पूर्ण चीजों की कदर क्या जाने ? उसने एक नई चीज निकाली---'घुंडी'! कपड़े की गोली-सी बनाकर उससे 'हुक' का काम लिया जाता था। आज भी गांधी बाबा के अनुयायियों ने इसी की नकल करके खद्दर के बटन निकाले हैं। पर खद्दर की पोटरी में वह सौन्दर्य कहाँ ! कला-सौन्दर्य की दृष्टि से 'बटन' अधिक आकर्षक है। इसने न केवल लोगों के दिल ही पर; बल्कि सर से लेकर पाँव तक समूचे बदन पर कब्जा जमा लिया ! और औरंगजेब के लाख कोशिश करने पर भी जिस तरह हिन्दुस्तान से हिन्दू, शिवलिंग और चोटी न गायब हो सकी, उसी तरह बटन भी बराबर बना रहा।

इसका प्रचार दिनों-दिन बढ़ता गया। अंगरेजों ने भी बटन लगाना हिन्दुस्तान से ही सीखा। इसके पहले की हालत किसी तवारीख में नहीं मिलती। 'हिन्दुस्तान' बटन का मादरे वतन होते हुए भी हिन्दुस्तानियों ने बटन की कुछ खास कदर न की। अंगरेज स्वभाव से ही कलाप्रिय होते हैं और गुणग्राहकता उनका प्रधान गुण है। बटन जैसी हरदिल-अजीज चीज को देखते ही उसे वह अपने देश उठा ले गये। फिर क्या था। इंग्लैण्ड में बटन की भरमार हो गयी। कोट, ओवरकोट, वेस्टकोट, पैन्ट तथा ब्लाउज, फ्राक, जम्फर सभी पर बटन ही बटन ! बिना बटन के वह कोई कपड़ा ही नहीं पहनते। यदि मैं कहूँ कि अंगरेजी सभ्यता बटन से निर्मित तथा बटन ही पर आश्रित है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

भारत में भी अंगरेजी सभ्यता के प्रसार के साथ बटनों का प्रचार भी बढ़ गया। आजकल तो बाबू लोगों की गरदन पर, छाती पर और जूतों पर भी बटन मिलेंगे। जेन्टिलमैन तो शरीर के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों पर 'बटन' का प्रयोग करते हैं। श्रीमतियों की साड़ियों के भीतर यदि आप ध्यान से देखें तो आपको जुगनूँ की तरह चमकते हुए रंग-बिरंगे 'बटन' दिखाई देंगे ! यदि आपकी प्रेमिका आपसे कह

होकर मुँह फेर ले, तो आप उसे छेड़कर और नाराज न करें; बल्कि पीठ पर पूरा कब्जा जमाये अछूती कलियोंसे गुंथी नागिन-सी चोटी को हटाकर मोती से चमकते हुए 'बटन' गिन डालें, जिनकी वजह से सुकुमार गात पर रेशमी कनात कसी हुई है! खुदा के लिए बटन खोलने के लिए हाथ बढ़ाकर आफत को न्योता न दें!

बटन दबाते ही कभी कभी बिजली दौड़ जाती है। इसी से शायद बिजली से काम लेने वालों ने 'स्विच' का नाम भी 'बटन' ही रखा है। यहाँ एक और बटन की याद आ गई। बुजुर्ग पाठकों से माफी माँगने की आवश्यकता पड़ने पर भी, कवित के एक चरण को उद्धृत करने की इच्छा नहीं रोक सकता। कुचों की उपमा देते हुए किसी कवि ने कैसी गजब की उड़ान ली है—'काम के जगाइबे को विद्युत बटन हैं।' कवि ने सचमुच बटन में जान डाल दी है। बटन भी क्या चीज है! मेरे एक दोस्त बटन पर फरमाते हैं—

बटन, छोटे सफेद चिकने-से
किसी के दिल की तुम भी आशा हो!
चिपक कमसिन बुतों के सीने से
हुए तुम फूल कर बताशा हो!

क्या खूब! बटन को लेकर कितनों ने जमीन आसमान एक कर दिये हैं। यहाँ, मैं कहानी जो कह रहा था वह भी 'बटन' ही की तो बात थी।

उस दिन 'सिनेमा' में टिकट न मिलने के कारण लौटा, तो देखा कि टाउन हॉल में कोई 'मीटिंग' हो रही है। बेकार क्या करता? घुस गया। वक्ता महोदय साम्यवाद के विरुद्ध लेक्चर झाड़ रहे थे। मैं ठहरा पक्का 'कम्युनिष्ट'! खड़ा-खड़ा सुनता रहा। लेकिन हजरत ने जब भारतीय साम्यवादियोंको 'रूस का स्वप्न देखने वाले भाखू' कह दिया, तो मेरा खून खौल उठा। बिना किसी से कुछ कहे-सुने मैं सीधा मंच पर आ धमका! सभापति जी सहम गये। वक्ता महोदय हुम क्या

कर नीचे उतर आये। मैंने बिना सभापति की अनुमति लिये ही बोलना शुरू कर दिया। 'बहनो, सभापति जी…और…!'—सामने बैठे हुए लड़के ने जोरों से खींखी करके दाँत निपोर दिये। गुस्से से उसकी ओर एक नजर देख कर मैंने अपना वाक्य पुनः दुहराया।

'बहनो, सभापति जी और भाइयो…!'—सामने बैठे हुए कुछ नवयुवक हँस रहे थे, पर मैं उनकी उपेक्षा करता हुआ बोलता रहा।

'मैं पक्का साम्यवादी हूँ…'—सामने बैठे हुए लड़कों की खींखीं अब हँसी में परिणत हो गई थी, उसमें बड़े-बूढ़े भी योग दे रहे थे। मैंने गुस्से से दाँत पीसकर कहा—'मैं पक्का साम्यवादी हूँ, रूस का भालू, देखने वाला स्वान नहीं!'—जनता अट्टहास कर उठी। ऐसे गंभीर प्रश्न पर जनता की उदासीनता देख मुझे उनकी बुद्धि पर तरस आया। मैंने सभापति जी की ओर देखा, वह भकुये-से टुकुर-टुकुर मेरी ओर ताक रहे थे। पुरुषों को उपेक्षा की दृष्टि से देख मैं महिलाओं की ओर घूमा। उनकी सहृदयता में मुझे पूर्ण विश्वास था। पर यह क्या? अचानक ड्राप-सीन का परदा गिर पड़ा। सब के मुँह पर घूँघट खिंच गये। घूँघट के भीतर से हँसी का कलनाद सुनाई दे रहा था। मैं चकित रह गया। समझ में न आई क्या बात थी! परदा फाश करने वाली बीसवीं सदी की बीबियों को एक मर्द से परदा? ताज्जुब! आखिर मैं कोई बाबा आदम तो था नहीं, जो मुझ से शरम करने के लिए घूँघट खींचने पड़ें। मैं पुरुषों की ओर घूमा, देखा सब हँस रहे थे। मुझे ऐसे लगा, जैसे मेरे चारों ओर बंदर दाँत निपोर रहे थे। सभापति की ओर घूमा, तो इस बार वह भी मुझे देख कर हँस रहे थे। मैं पागल हो उठा। उस वक्त सचमुच मैं गुस्से से काँप रहा था। सभापति जी ने तुरत खड़े होकर मुझे सहारा देकर नीचे उतारा और मेरे कान के पास मुँह लगाकर बोले—'अगर बुरा न मानिये तो एक बात कहूँ?'

मैं चुप रहा।

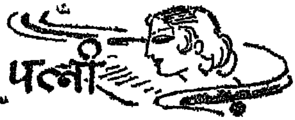
'आप के पैन्ट के बटन खुले हैं!—उन्होंने धीरे से कहा।

'क्या कहा ?'—मैं चिल्ला उठा। और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये क्षण-भर में टाउनहाल से बाहर हो गया।

घर आकर उस दिन मैंने कसम खा ली कि कमर के नीचे ऐसा कोई भी कपड़ा न पहनूँगा, जिसमें बटन की जरूरत पड़े।

मैं समझता हूँ कि कहानी समाप्त करने के लिए यह उपयुक्त स्थल है। श्रीमती जी कुरते में बटन टाँक चुकी हैं और मुझे 'सिनेमा' जाने के लिए देर हो रही है।

कवयित्री पत्नी



मेरे विवाह के अवसर पर मेरे साहित्यिक मित्रों ने मुझे प्रेम शब्दों के 'उपहार' दिये और दूर-दूर के कवियों ने बधाई के तार भेजे। हिन्दी प्रचारिणी सभा और साहित्य-सम्मेलन ने मुझे मानपत्र अर्पण किये—इसलिए नहीं कि मैं कोई बड़ा-भारी साहित्यिक था; बल्कि इसलिए कि मेरी देवी जी हिन्दी की एक महान कवयित्री थीं। विवाह में मुझे वे मिलीं और दहेज में उनकी उपहार में प्राप्त वस्तुएँ, अर्थात् यश-ख्याति, कप-मेडल और पुस्तकें आदि। देवीजी को पाकर मैं बहुत-कुछ पा गया।

श्रीमतीजी कालेज के कवि-सम्मेलन में भावुक सभापतियों तथा प्रेमी प्रशंसकों द्वारा अनेक सोने-चाँदी के पदक तथा कटोरे प्राप्त कर चुकी थीं, जो संख्या में इतने अधिक थे कि मेरे ससुरजी को दहेज में गहने और बर्तन देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी, और जिन्हें रखने के लिए मुझे अपने पुराने मकान का एक हिस्सा तोड़कर शो-रूम बनवाना

पड़ा। श्रीमतीजी के विवाह के अवसर पर हिन्दी के प्रायः सभी प्रकाशकों ने अपने यहाँ की पुस्तकों का एक सेट भेंट किया था, जिन्हें रखने के लिए श्रीमतीजी की एक सखी ने, जो किसी बड़े आफिसर की लड़की थीं, एक दर्जन सागवान की लकड़ी की आलमारियाँ भेंट की थीं, जो इतनी बड़ी थीं कि उन्हें ड्राइंग-रूम में ले जाते समय दरवाजे तक तोड़ने पड़े।

सारांश यह कि श्रीमतीजी ने गृह-प्रवेश करते ही मेरे घर का काया-कल्प कर डाला। मेरी श्रामती जी एक ख्यातनामा कवियित्री थीं—मेरे दुर्भाग्य की कहानी यहीं से शुरू होती है। उनके आते ही मेरा मकान साहित्यिक तीर्थस्थान बन गया। कोई 'इण्टर-व्यू लेने पहुँचता, तो कोई 'ऑटोग्राफ'! कभी फोटो-सहित कविता छापने के लिए उत्सुक सम्पादकजी आते तो कभी साहित्यिक परिचय और दर्शन का बहाना लेकर युवक कवि। मैंने कवियित्री से शादी करके एक बला मोल ले ली। मुझे कवि, कविता और कवि-सम्मेलन से चिढ़-सी पैदा हो गई। फिर भी मैं श्रीमतीजी के कोमल हृदय के सुकोमल भावों को चोट नहीं पहुँचाना चाहता था।

रात को मेरे सभापतित्व में इनडोर कवि-सम्मेलन हुआ था, इसलिए सबेरे जरा देर से नींद खुली। सिर में भारीपन, आँखों में खुमारी अवशेष थी। मैं उस समय दाढ़ी बनाता हुआ कविता और कवियित्री का सम्बन्ध स्थापित कर रहा था कि एक खद्दरपोश सज्जन प्रवेशमान हुए। बगल में दबे हुए अखबारों के पुलिन्दे से किसी पत्र के सम्पादक-से लगते थे। मैंने आँख खोलकर अच्छी तरह देखा, मुझे ऐसा भास हुआ कि चिड़ियाघर के आस-पास कहीं देखा हो।

चेहरे पर सोप की कोटिंग किये हुए हाथ में सेफ्टी उस्तरा लिये मैं स्वागत के लिये उठ खड़ा हुआ—"कहिये ?"

भय से एक कदम पीछे हटकर वे बोले—"हैं-हैं-हैं, मैं "कुमुदिनी" का सम्पादक हूँ।"

"हं हें हें, आपका आफिस किसी तबेले के पास तो नहीं है ?"

मैंने प्रश्न किया।

"क्या कहा आपने, हें हें-हें, जी नहीं, मैं तो कुमारी, नहीं, श्रीमती सुकुमारी देवी से भेंट करने आया था, हें हें-हें—"

"आप इसकी दवा क्यों नहीं करते ?"—मैंने गम्भीरता से पूछा।

"किस बात की ?"

"यही हिनहिनाने की !"

"क्षमा कीजियेगा, मैं समझा नहीं, हें हें-हें !"

इतने में परदे के भीतर से कंकन किंकिनि-नूपुर की ध्वनि और चूड़ियों की झनकार हुई तो सम्पादकजी सजग हो गये। कुरते का बटन, कंधे का दुपट्टा और मूछों को यथास्थान ठीक करते हुए उनकी आँखें परदे की ओर केन्द्रित हो गईं। मै सम्पादकजी की बेकरारी देख रहा था। पर सम्पादकजी कोई चकोर तो थे नहीं ! पन्द्रह मिनट तक एकटक देखते रहे। परदा नहीं उठा, निराश हो गये।

"हाँ, तो आपकी क्या खातिर की जाय ?"—मैंने ध्यान भंग किया।

"बस, आपकी कृपा चाहिये, हें हे-हें !"

"सो तो है ही और....?"

"और सुकुमारीजी का एक फोटो, हें-हें हें !"—सम्पादकजी ने दो-तीन मिनट तक अपने सफेद दाँतों का प्रदर्शन किया, फिर बोले—"सुकुमारीजी की 'कुमुदिनी' पर बराबर कृपा रही है। इसी अवसर के लिए खास अङ्क निकाल रहा हूँ, जिसमें देवीजी का फोटो जाना नितान्त आवश्यक-सा है। आप चाहें तो, हें-हें-हें !"

"क्षमा कीजियेगा, सुकुमारीजी ने फोटो तो सिर्फ लड़कपन में खिंचवाया था, वह 'शिशु' या 'बालसखा' में छप चुका है। आप चाहें तो पुरानी फाइल तलाश कर उसका उपयोग कर सकते हैं। इधर तो मेरे जानते कोई फोटो उनका खिंचा नहीं। अगर खिंचा होता, तो मुझे जरूर मालूम रहता। मैं उनका पति हूँ, यह शायद आप नहीं जानते ?"

"जी हाँ, हें-हें हें ! कहिये तो मैं अपना फोटोग्राफर साथ लेता आऊँ । सुकुमारीजी का चित्र इस अवसर पर 'कुमुदिनी' में अवश्य निकलना चाहिए । इससे अच्छा अवसर फिर कहाँ मिलेगा ? आपको कोई आपत्ति तो नहीं होनी चाहिये ।"

"आपत्ति हो भी क्या सकती थी, पर बात यह है कि सुकुमारीजी कल शाम को मायके तशरीफ ले गयी हैं ।"

"लाहौल-विला-कूवत ! यह आपने पहले ही क्यों न बता दिया ?"—और पेंच खाते हुए सम्पादकजी छड़ी उठाकर बाहर चल दिये ।

अभी पाँच मिनट ही बीते थे कि एक भजनी सम्प्रदायवाले युवक कवि कंधे तक घुँघराले बाल लटकाये, रेशमी रूमाल से सुनहरा चश्मा पोछते हुए दरवाजे के पास आकर कोकिल-कंठी के स्वर में कुहक उठे—

"क्या आप सुकुमारी जी का निवास-स्थान बता सकते हैं ?"

चश्मे की कमानी से मेरी दृष्टि कमर की कमानी पर पड़ी, जो एक सेकेण्ड में तीन बार स्प्रिंग कर रही थी ।

"जी हाँ, यह सामने जो पीला-सा मकान देख रहे हैं, वहीं सरला तरला पुकार लीजियेगा ।"

सामने का पीला मकान किसी परदेसी का था । सरला उसकी लड़की का नाम था, जो एक सप्ताह पूर्व स्वयंवर-प्रथा का पालन कर किसी अज्ञात स्थान में 'हनीमून' मनाने चली गई थी । पता नहीं, कवि महोदय पर कैसी बीती ! मैं दरवाजा बन्द करके ऊपर भागा ।

वहाँ देखा तो, श्रीमती जी कविता करने लगी हैं ! स्टोव जल कर बुझ गया था । पानी उबल कर ठंडा हो गया था । दूध में मक्खियाँ तैरना सीख रही थीं, और श्रीमती जी अपनी कविता के 'साजन' की तुक मिला रही थीं । आज न जाने दूँगी साजन—यह गुनगुना रही थीं ।

"लेकिन मैं तो अब जा रहा हूँ ।"—मैंने कहा ।

"कहाँ ?—श्रीमती जी स्वप्न से जागती हुई बोलीं ।

अचानक खाली प्याले पर मेरी नजर पड़ी, तो जी मसोस कर रह

गया। मैंने उनके हाथ से कागज कलम ले लिया कागज पर लिखी हुई पंक्ति के नीचे मैंने लिखा—'चाय न पीने दूँगी साजन।' पर यह क्या, श्रीमतीजी के नयन कोरों में दो बूँद आँसू झलक पड़े।

"आप मेरी कविता का मजाक करते हैं? मैं रो दूँगी!"

मैंने रेशमी रूमाल निकाल कर कवियित्री के नयनों के मोती बटोर लिये पर फिर कभी उनके हृदय के साथ मजाक करने का साहस न कर सका।

मैं आपको —
जानता नहीं



चौक की सड़क पर तेजी से पाँव बढ़ाता हुआ घर आ रहा था। ऊपर काले-काले बादल किसी कुमारी के घुँघराले केशों की तरह लटक रहे थे। बिजली की चमक—दमक से आँखें शरमा रही थीं, बादलों की तड़क-भड़क से दिल धड़क रहा था, और वर्षा की आशंका से पैरों की रफ्तार तेज होती जा रही थी। अचानक पीछे से किसी ने पकड़ कर खींचा। मैं खड़ा हो गया। देखा-तो कोई अजनबी सूरत थी।

"कहिये ?"

उसने कहा—"नमस्ते।"

"नमस्ते!"—मैंने भी कहा।

"आप अच्छी तरह··· ?"

'किसी तरह जी रहे हैं।"

"घर पर सब खैरियत ?"

"आपकी दुआ है।"

"और वे ?"

"वे कौन ?"

"अरे वही, क्या नाम है···?"

"जी हाँ, अच्छी तरह हैं।"

"और बच्चे-वच्चे ?"

"जहाँ हैं, अच्छी तरह होंगे !"

"इसके मानी ?"

"यही कि अभी तक....."

"ओह ! मुझे भ्रम था कि बच्चे भी होंगे ?"

"तो आपका मतलब है कि बच्चे नहीं हैं ?"

"जी नहीं, मेरा यह मतलब नहीं है।"

"तो आपका क्या मतलब है ?"

"कुछ नहीं, यही कि...खैर, जाने भी दीजिये, यह तो पूछिये कि कब आना हुआ ?"

"कब आना हुआ ?"

"आप तो मजाक करते हैं !"

"जी नहीं, मैं काफी सीरियस हूँ। मजाक तो मैं सालों से नहीं करता। खातिर जमा रखें। कहिये कब आना हुआ ?"

"अभी—अभी लखनऊ से चला आ रहा हूँ— शाम की गाड़ी से। मैंने सोचा, आपके यहाँ भी होता चलूँ, पर घर का पता नहीं मालूम था, इसलिए होटल की ओर जा रहा था। बड़ी खैरियत हुई जो आप मिल गये।"

बादल बरस ही पड़ना चाहते थे। छोटी-छोटी बूँदें अग्रिम सूचना दे रही थीं। घर की याद आते ही पैरों को दौड़ने की प्रवृत्ति हो रही थी। पर यह कम्बख्त आस्तीन पकड़े जो खड़ा था ! छोड़ने का नाम ही नहीं ले रहा था। उल्टे ही, 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान' ! अजीब मुसीबत थी।

"कहिये बनारस का दंगा तो अब खतम हो गया ?"

"जी हाँ।"

"कितने आदमी मरे होंगे अंदाजन ?"

यही, कोई एक हजार ! हैजा प्लेग और रोग के मरने वालों की तादाद भी इसी में शामिल है !"

मैंने वर्षा के पहले घर पहुँचने की आशा बिलकुल छोड़ दी।

"आपके लखनऊ में तो काफी चहल-पहल रहती है।"

जी हाँ। लखनऊ है भी बड़ा अजीबो-गरीब शहर। उसकी हरेक अदा...."

"और आपके यहाँ मदहे सहाबा का आन्दोलन कैसा चल रहा है ?"

"वह तो कभी का समाप्त हो गया। अब शीयों ने तबर्रा गाना शुरू किया है। इन लोगों ने भी आसमान सर पर उठा लिया है। आपको अभी खबर तक नहीं ?"

बात यह है कि मुझे गाने-बजाने से जरा-जरा कम शौक है। अखबार कभी-कभी पढ़ लिया करता हूँ—वह भी केवल कानूनी पन्ना !"

"हाँ तो आपकी प्रेक्टिस कैसी चल रही है ?"

"सीजन डल है, बड़ी स्लो जा रही है।"

बूंदें बड़ी पड़ने लगीं। मेरा धैर्य खतम हो रहा था।

"आपके यहाँ बारिश तो होती नहीं ?"

"जी हाँ, इस साल बहुत कम हुई। कम्बख्त गरमी, उफ ! अमीनाबाद में थोड़ी-बहुत राहत मिल जाती थी, वरना दरिया गोमती का तो गला सूख रहा है ! ऐसी गरमी कहीं हमारा लखनऊ बरदाश्त कर सकता है ?"

कम्बख्त को खुदा ने दिमाग नाम की चीज दी ही नहीं ! मैं मन-ही-मन तरस खा रहा था। कुछ देर चुप रहने के बाद—

"आप मुझे यहां न देखते"

"क्यों-क्यों ?"

"रास्ते में कई एक्सिडेण्ड हुए !"

फिर भी आपकी शैतान की सवारी यहाँ सही-सलामत पहुँच ही गई! मैंने मन-ही-मन कहा।

"लखनऊ में ही पहले पटरी पर से फिसल…"

"क्या रेल की पटरी ?"

"अजी नहीं, मेरी-चप्पल केले के छिलके पर पड़कर फिसल गई, बगल का बिजली का पोस्ट न पकड़ लिया होता तो…"

"लाहौल बिलाकूवत! मैंने समझा कोई ट्रेन डिजास्टर हो गया!"

"और दूसरा ऐक्सिडेण्ट——"

इतना कहना ही था कि बगल से एक कार ने तेजी से क्रैश किया। मैंने हजरत का हाथ पकड़ कर खींचा न होता, तो बरसात की यह मनोहारी रात अपने नये मेहमान की तीमारदारी में अस्पताल में बितानी पड़ती।

बूँदें बढ़ रही थीं और अजनबी महोदय की मुहब्बत घटने का नाम नहीं ले रही थी।

"तो अब इजाज़त दीजिये?"—मैंने ऊबकर कहा।

पर मेरी शराफत-भरी बारीक आवाज बगल से गुजरती हुई खूबसूरत कार के 'कंसर्ट' में डूब गई। मैंने फिर कहा—"अभी तो आपका रहना होगा ?"

"जी नहीं, मैं सुबह की गाड़ी से चला जाऊँगा। जीजी को देखे काफी दिन हो गये थे, इसलिए मिलने के इरादे से रुक गया।"

"ओह!" मैं चौंका। यह तो बहुत नजदीकी ही निकले! मैं मन-ही-मन अपने सालों की फिहरिस्त में इनकी हुलिया ढूँढ़ रहा था, पर निराश हुआ। गौर से चेहरे की ओर देखकर पहचानने की बारबार कोशिश कर रहा था, पर चेहरे का कोई भी हिस्सा ऐसा न लगा कि पहले भी कहीं देखा हो! मेरी तेज निगाहों से घबरा कर वे बोले—

"घर चल रहे हैं न ? बहुत दिनों के बाद जीजी से मिल रहा हूँ। मुझे तो शायद पहचान भी न पायें !"

मैं चुप था, और इधर मामला पेचीदा और संगीन होता जा रहा था।

"तो जल्द चलिये, अब बारिश होना ही चाहती है !"

तोप की गड़गड़ाहट के साथ आसमान फट पड़ा और मूसलाधार पानी बरसने लगा। बादलों का चिरसंचित कोप बटने लगा; पर अपरिचित महोदय की मुहब्बत—? मुझ से रहा नहीं गया, बोला—

"माफ़ करियेगा, सुनकर आपको धक्का तो लगेगा, पर मजबूर हूँ। बात यह है कि मैं आपका जीजा नहीं !"

पास ही खड़े रिक्शे में मैं कूदकर बैठ गया। रिक्शावाला तेजी से दौड़ पड़ा। मैंने पीछे झाँककर देखा, साले साहब पानी में खड़े भींग रहे थे।

अछूत कन्या



जब वह बारह वर्ष की हुई तब अचानक एक दिन यौवन ने चढ़ाई कर दी। वह इस के लिये तैयार न थी तो भी उसने जबर्दस्त मोर्चे बंदी की। पर एक ओर मदन महीपजू के दक्ष सैनिक, दूसरी ओर बारह वसंत देखी हुई एक अबोध बालिका। गुलाब की कलि का आँधी का मुकाबिला करने चली। आखिर हुआ वही जो होना था–उसे करारी हार खानी पड़ी। उसकी आँखें शर्म से झुक गयीं, कपोल भयंकर रक्त वर्षा हो उठे, चेहरे पर लज्जा की लाली दौड़ गयी। किलों पर कामदेव का कब्जा हो गया। किसी ने कहा– तुम जवान हो गई! उसकी समझ में न आया। उसकी अनजान भोली आँखें लोगों से प्रश्न करतीं—'क्या यह बात सच है?'

वह एक हरिजन बाला थी। नाम था चम्पा। शरीर का रंग भी कुछ चम्पई लिये था। मेरे मित्र शर्माजी के नायिका भेद के अनुसार वह पद्मिनी थी, क्योंकि उसके शरीर से बराबर खुशबू निकलती थी जिसका रसा-

स्वादन करने के लिए कितने लोभी भौंरे उसके आस-पास मंडराया करते थे। शर्माजी काले होते तो इनका भी शुमार मैं भौंरों में करता।

शर्माजी के और मेरे मकान के बीच में एक खाई थी, जिसे गली भी कहते हैं। इसी गली की सफाई के लिए न जाने किस शुभ घड़ी में म्युनिस्पैलिटीने चम्पा को नियुक्त किया। शर्माजी को ऐसा लगा कि उनके पूर्वजों तक के पूर्व जन्मों का पुण्य-फल उदय हुआ है जो नंदन कानन की कुसुम कली इस गली में आकर मधुकण बिखेरेगी, इन्द्र लोक की अप्सरा आकर मकानों के दरवाजों पर झाड़ू देगी!

शर्माजी का हृदय बड़ा ही कोमल और भावुक था, उनके लिये तो इसकी कल्पना भी असह्य थी—चम्पा के सुकुमार करों में झाड़ू देखकर तो उनके नयन-कोरों से आँसू की बूंदें निकल पड़ीं।

फिर तो प्रातःकाल चम्पा की प्रभाती भैरवी से हमारी नींद खुलती। शर्माजी तो प्रभात की प्रतीक्षा में रात के पिछली पहर जाग कर ही काटते थे। मेरी सुबह देर तक सोने की आदत है, पर चम्पा के कोकिल कंठ से निकला हुआ स्वर कानों में पहुँचते ही पलक अपने आप खुल जाते। फिर मैं अपनी खिड़की पर होता और शर्माजी अपनी खिड़की पर। चम्पा के गीत में सबेरे-सबेरे जो मजा आता वह न सिनेमा में मिल सकता है, न रेडियो में, न थियेटर में, चम्पा के सिवा कहीं भी नहीं।

शर्माजी के और हमारे (मकानों के) बीच में इतना बड़ा व्यवधान होते हुए भी हम दोनों निकटतम मित्र थे। एक दूसरे की बातों से अक्षरशः सहमत होना कोई आवश्यक नहीं था। विचार विभिन्नता, मतस्वातंत्र्य के लिये काफी स्वाधीनता थी। इसीलिये इतनी विषमता होते हुए भी हमारी और शर्माजी की मित्रता टिकी हुई थी। मेरे बारे में आपको अधिक जानने की जरूरत नहीं—हाँ मेरे मित्र शर्माजी काँग्रेसी थे। घर में बाप दादों की कमाई थी, अकेले थे, अविवाहित थे, पढ़े-

लिखे थे, बेकार थे—देश सेवा के सभी साधन एकत्रित होते हुए भी यदि शर्माजी कांग्रेसी न होते तो आश्चर्य होता। कोरे कांग्रेसी ही नहीं थे, कांग्रेस के सारे सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन भी करते थे। महात्मा गांधी के हरिजन आंदोलन आरंभ करते ही आप एक दिन सवेरे उठकर सड़क साफ करती हुई चम्पा के हाथ से झाड़ू छीनकर स्वयं सेवा का आदर्श उपस्थित करने लगे। तमाशा देखने के लिये महल्ले वालों की भीड़ जमा हो गई। मैं बिस्तर पर लेटे ही खिड़की में से शर्माजी का यह अभिनय देख रहा था। वहाँ नहीं गया, डर था कि आधी सड़क साफ करने के बाद शर्माजी कहीं मेरे हाथ झाड़ू न थमा दें। मैं अछूतों से सहानुभूति तो रखता था पर मेरा सारा सद्भाव चम्पा तक ही सीमित था। पर शर्माजी चम्पा के कारण सारी अछूत जाति के प्रेमी बन गये। महल्ले ही में एक अछूत रात्रि पाठशाला खोल रखी थी। जिसमें अपने बहुमूल्य समय में दो घंटे देते थे। पर अनेक बार प्रार्थना करने पर भी चम्पा पाठशाला में आने को राजी न हुई तो शर्माजी को रात्रि पाठ-शाला छात्रों के अभाव में बंद कर देनी पड़ी।

इससे शर्माजी निराश नहीं हुए, वरन दूने उत्साह से कार्य करने लगे। प्रात सायं हरिजन आश्रम के चक्कर लगाते थे। अछूतों को इकट्ठा कर—जिसमें चम्पा का रहना आवश्यक था, उपदेश, धर्म, चर्चा तथा सफाई आदि पर व्याख्यान देते। कभी-कभी आपका हरिजन-प्रेम सक्रिय रूप में भी प्रकट हो जाता था। हरिजनों में साबुन की बट्टी और तौलिया भी बँटवा देते थे, पर एक बात थी—जहाँ अन्य लोगों को ५०१ की बट्टी मिली वहाँ चम्पा के पास 'पीयर्स' सोप का डब्बा, हिमानी स्नो, पाउडर तथा रेशमी साड़ी का उपहार पहुँचता था। चम्पा की तो आँखें खुल गईं। उसने अपने प्रेमी को पहली बार पहचाना। वैसे तो पहले भी शर्माजी की आँखों में झाँक चुकी थी, पर उसे नहीं मालूम था""। खैर

उसने उस दिन शीशा निकाल कर देखा तो सचमुच वह बड़ी खूबसूरत लग रही थी। उसने शीशे में अपना मुँह चूम लिया, सजधज कर नई साड़ी चमचमाती हुई चम्पा अपने आईने के पास पहुँची। उसका आईना था उसका पहला प्रेमी प्रशंसक मधुआ—२० साल का छबीला जवान। चम्पा के हुस्न की प्रशंसा केवल मधुआ ही कर सकता था।

'अरे वाह री चम्पो, आज तो बड़ी खूबसूरत और खुशबूदार बनी हो। किस कम्बख्त की शामत आई है?'

'जिसके पास आई हूँ—खैर मज़ाक छोड़ो। आज जरी चौक चलना है।'

'सितम न करो—इस रूप में बाजार चलोगी तो लाशें उठ जायेंगी—क्या करने पर तुली हो?'

इसके उत्तर में मधुआ को चम्पा के हाथ के मीठे तमाचे खाने को मिले। गाल सहलाते हुए मधुआ बाहर निकला। बगल में चम्पा थी। जो देखता उसी की नजर चिपक जाती, हटने का नाम न लेती। रूप में रंग, सोने में सुगंध का काम दे रही थी, फिर रेशमी साड़ी तो गजब कर रही थी। मधुआ का सीना चार इंच फूल गया था। दोनों शर्माजी के मकान के नीचे से निकले तो शर्माजी ऊपर बरामदे में टहल रहे थे। चम्पा को देखा तो दिल की कली खिल उठी, पर साथ में किसी और को देखते ही भौंहें तन उठीं। धीरे से पुकारा 'चम्पा'। चम्पा ने ऊपर देखा, मुस्करा कर मधुआ की ओर देखा, फिर इठलाती हुई आगे बढ़ गई। शर्माजी के दिल में सैकड़ों बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारा। शर्माजी अपने रकीब के भाग्य पर रश्क कर रहे थे।

× × ×

शर्माजी को एक नौकरानी की जरूरत महसूस हुई। काम था—सर का दर्द, दिल का दर्द, टेबुल का गर्द दूर करना, कमरे को

साफ करना, ड्राइंग रूम का शृंगार करना, वेतन २५) रुपये। शर्माजी ने इसी लिये चम्पा को बुलाया। मधुआ से पूछकर उसने नौकरी मंजूर कर ली! अब क्या था। शर्माजी की पाँचों अँगुलियाँ घी में थीं। जिसके दर्शन लिये तड़फते वही रोज खुद आ के दर्शन दे जायेगी—इससे अधिक और क्या चाहिये। शर्माजी के पैर जमीन पर नहीं पड़ते थे—हवा में उड़ने लगे, चाँद जमीन पर उतर आया। स्वर्ग शर्माजी के मकान में झाँकने चला आया। दस बजे सुबह तक सोनेवाले शर्माजी को अब क्यों नींद लगने लगी। सबेरे से ही आँख बंद करके पड़े रहते थे कि चम्पा आये तो उठूं। इसकी मीठी आवाज सुनने के लिये कान तरसते रहते, वह आकर पुकारती—'बाबूजी' 'बाबूजी'—एक दो नहीं तीन बार। तब शर्मा जी 'ऊँ ऊँ' करके अँगड़ाई लेते हुए बोलते 'अरे कौन चम्पा है क्या? चली आ न।' चम्पा भीतर आती।

'आज तो बड़ी जल्द चली आई चम्पा, के बजे हैं?'

'वाह बाबूजी नौ बज रहे हैं।' चम्पा मुस्करा देती। शर्माजी इसी एक मुस्कान पर अपना सर्वस्व अर्पण कर देते।

चम्पा धीरे-धीरे शर्माजी के जीवन के अधिक निकट आने लगी। आती ही क्यों न? लता का स्वभाव ही होता है झुकना और फिर जब वह झुकाई जाती हो तो फिर सीधा रहना असंभव ही है। चम्पा शर्मा जी की ओर खिंच रही थी इसमें कोई आश्चर्य और अस्वाभाविकता न थी। शर्माजी अपनी विजय पर गर्वित थे।

जाड़े का प्रातःकाल था। उठने का समय हो गया था, पर शर्माजी लिहाफ के भीतर ही पड़े चम्पा की प्रतीक्षा कर रहे थे। आखिर चम्पा आई—आज कुछ देर हो गई थी।

'इतनी देर कहाँ लगा दी चम्पा?'

'मधुआ ने रोक लिया था।'

'मधुआ-बदमाश क्या कहता था ?'

'कुछ नहीं, ऐसे ही कुछ बातचीत करने के लिये।'

'तुम उसका साथ छोड़ क्यों नहीं देती ?'

'वह नहीं छोड़ता।'

'हूँ'। कहकर शर्माजी लिहाफ के भीतर ही कुढ़ रहे थे। 'अच्छा एक बात कहूँ, मानेगी चम्पा।'

'क्या ?'

'यही कि तू मेरे साथ शादी कर ले।'

चम्पा के चेहरे पर रंगीन परदे उठकर गिर गये। वह शर्मा रही थी, पर इसके साथ ही वह शर्माजी के पलंग के पास बहक आई। शर्माजी ने उसका हाथ पकड़कर पलंग पर बिठा लिया। फिर क्या था, स्वीकृति मिलने में कोई विशेष दिक्कत न हुई।

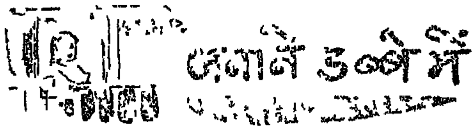
दूसरे ही दिन नगर में दैनिकपत्रों में बड़े-बड़े शीर्षक में यह समाचार छपा। शर्माजी की फोटो सहित जीवनी भी। स्थान-स्थान से बधाई के तार आने लगे। पत्रों के ढेर ढोते-ढोते डाकिये ने जवाब दे दिया।

विवाह का दिन भी निश्चित हो गया। एक बड़े भारी हरिजन भोज का प्रबंध हुआ। आर्य समाज मंदिर को पाँच हजार का दान मिला। चंदा माँगने वाले दरवाजों पर सत्याग्रह करने लगे। आखिर नियत तिथि आ ही गयी। आर्य-समाज मंदिर की सजावट आज देखने लायक थी। असंख्य बिजली के रंग बिरंगे बल्बों का प्रकाश सतरंगी झंडियाँ, वंदनवार और तोरन—मंदिर की तरह सजा हुआ था। आर्यसमाज मंदिर के बाहर मोटरों की कतार लगी थी। शहर के सभी बड़े-बड़े रईस और अफसर आमंत्रित थे। देश के बड़े बड़े नेताओं ने अपनी अनुपस्थिति के लिये क्षमा माँगते हुए कुछ संदेश भेजे थे। महात्मा गांधी ने भी तार द्वारा वर-वधू के लिये आशीर्वाद भेजा

था। सभी संदेश पढ़कर सुनाये जा चुके। अब विवाह-कार्य प्रारंभ होना चाहिये, पर अभी लड़की के आने मे देर थी। फौरन कार भेजी गई। 'शायद 'टायलेट' में देर हो गई हो' 'विवाहकी मुद्रिका या सिंदूर की डिबिया खो गई हो' हम-लोग उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हुये अंदाज लगा रहे थे। कुछ देर बाद खाली कार लेकर स्वयंसेवक लौटा तो लोगों को चिंता हुई। शर्माजी घबड़ाकर उठ खड़े हुए। स्वयंसेवक पर प्रश्नो की बौछार सी हुई। जेब से रूमाल निकालते हुये उसने कहा—

'चम्पादेवी घर पर नहीं हैं—मधुआ भी लापता है।'

उपस्थित व्यक्तियों को इन बातों मे परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने में देर न लगी। कानोकान बात फैल गई। उस समय शर्माजी की दशा सचमुच दयनीय थी। लोग बधाई के स्थान पर सम्वेदना प्रकट कर रहे थे। मैं जले पर नमक छिड़कना उचित न समझकर सिनेमा देखने चल दिया। चित्रा में 'अछूत कन्या' चल रहा था।



जाड़े के दिन में सुबह की गाड़ी पकड़ लेना कोई आसान काम नहीं। फिर यहाँ तो आधी रात बीते अभी दो ही घंटे हुये थे। अच्छी तरह आँखें भी नहीं खुली थीं। नींद खुल गई, यही बहुत था। गाड़ी का मिलना तो भाग्य की बात है।

खास-खास मौकों पर मेरा भाग्य हमेशा धोखा दे जाता है। फिर ऐसा संगीन मौका कि मैं लखनऊ जा रहा था। खास कर जब कि लखनऊ में मेरी सुसराल हो, सुस-राल में शादी हो और फिर शादी भी हो साले की। कितना नाजुक औपन्यासिक अवसर था! कितनी मनौतियाँ मनाता हुआ मैं भागा जा रहा था स्टेशन की ओर! ताँगे-वाला घोड़ी से मुहब्बत की बातें करता हुआ बड़े दुलार से, प्यार से, आजिजी से, उसे जरा और तेज चलने के लिए फुसला रहा था। खुशामद करने से औरतों का पत्थर का दिल भी पिघल जाता है फिर वह तो कहिये घोड़ी

ही थी, अपनी चाल दिखला गई, और मैं स्टेशन पर था। लेकिन वाह री किस्मत ! तू ने बड़े वक्त पर साथ दिया।

गाड़ी प्लैटफार्म पर खड़ी थी जैसे मेरा ही इंतजार कर रही हो। मुझे पुल पर देखते ही चलने की धमकी देने लगी। मैंने कहा—जरा रुक जा, पर कौन सुनता है। धक् धक् ! अरे यह तो चल दी। दौड़कर तेजी में पावदान पर चढ़ ही तो गया और फिर पुकार उठा—इधर आओ ओ कुली। कुछ देर गाड़ी की चाल धीमी ही रही। मतलब यह कि जाड़े में बेमौत मरने से बच गया। कुली को आठ आने पैसे देकर सलाम लिया और खुशी खुशी-गाड़ी को तेज चलने की इजाजत दे दी।

इधर कम्पार्टमेंट में नजर डाली तो देखा जिसे अभी तक खाली समझे हुए था वह भरा था, नीचे ऊपर के दोनों बर्थ लिहाफ से ढंके थे। लम्बा सफर और मेरी रात को सोने की आदत— कमरे की हालत देखकर मुझे जाड़े में भी पसीना हो आया। सोचा कि बिस्तरबन्द खुलने की नौबत ही नहीं आयेगी। यह जानकर कि इसमें कुछ जनानी सवारी हैं, संकोच भी हुआ कि इन्हें उठाया कैसे जाय। आप पूछ सकते हैं कि चेहरा लिहाफ से ढँके रहने पर भी मैंने कैसे पहचान लिया कि अन्दर कोई जनानी सवारी है। बात यह थी कि चेहरा तो ढंका था जरूर, पर पाँव खुल रहा था और पैरों की मखमली जूतियाँ टपककर नीचे आ गिरी थीं। फिर बात यह हुई थी कि एक ही लिहाफ से दो का काम निकल रहा था और लिहाफ की लम्बाई चौड़ाई बराबर न होने के कारण बेचारे पैरों को सर्दी में ठिठुरना पड़ रहा था। इसी सबब से मुझे इन गोरी नंगी एड़ियों को पहचानने में कोई विशेष दिक्कत न हुई।

अंदाजा किया तो लिहाफ के अन्दर की आबादी आधे दरजन के करीब लगी। ऐसे ही चुपचाप बुद्धू सा बैठना बुरा लगा। लेकिन सवाल

था करूँ भी तो क्या करूँ। इनमें से किसी को जगाया ही क्यों न जाय। पर हिम्मत न हुई। सोचा अगर लिहाफ के अन्दर से मियाँ बीबी निकल पड़े तो लेने के देने पड़ जायँगे। मखमली जूतियों पर जो नजर पड़ी तो एक को उठा लिया। ललचाई नजरों से इस्तेमाल करने वाले की सराहना की, मखमली जूती की तारीफ की, जी में आया बिस्तर में बाँध लूँ, पर चोरी का माल बरामद हो जाने का भय था। एक इरादा हुआ कि जूतियों को खिड़की के बाहर हवा में उछाल दूँ, पर पैरों पर दया आ गयी और इस इरादे को कार्यरूप में परिणत न कर सका।

इतने में अचानक गाड़ी धीमी होने लगी और एक झटके के साथ खड़ी हो गई। गाड़ी के झटके से ऊपर के बर्थ से एक किताब की जिल्द नीचे आ गिरी। नतीजा यह हुआ कि लिहाफ के अन्दर से एक खुशनुमा चेहरा बाहर निकल आया। आँखें चार हुईं। मुझे देखते ही वह चौंक पड़ी—घबड़ा-सी गई।

'डरने की कोई बात नहीं'—मैंने कहा। पर वह भयभीता-सी मेरी ओर देख रही थी जैसे मेरी आँखों में कुछ पढ़ने की कोशिश कर रही हो। मुझे कुछ अचानक याद आया।

'माफ कीजियेगा, यह किताब मैंने नहीं फेंकी–ऊपर के बर्थ से गिरी है।'

पर इन सबका कुछ असर नहीं हुआ और उसने बगल के साथी को जगाया— 'अरी कह्लो।' जगाने के लिए शायद 'चिकोटी' का प्रयोग किया गया था क्योंकि लिहाफ के अन्दर से उफ-उफ के चीत्कार के साथ गालियों की बौछार आई। आवाजसे जातिका पता तो चल ही गया और नाम मालूम हो गया।

'अरी उठ तो निगोड़ी'—

निगोड़ी कह्लो को उठना पड़ा।

'क्या है ?'

'यह देखो कौन है ?'—मेरी तरफ इशारा हुआ।

मुझे गौर से देखकर बोली—'अरे मेरा चश्मा कहाँ है ? जरा देखूँ। चेहरा तो पहचाना-सा लगता है।

चश्मा लगाकर जो उसने मेरी ओर घूरा तो मैं घबड़ा-सा गया। फिर इसके बाद तो उसने तूफान सर पर उठा लिया।

'अरी बिब्बो, रज्जो, गिनी, रानी, उठा देखो तो सुरों ने क्या चीज मँगाई है !'

एक साथ ही सभी लिहाफ के परदे उठे और एक से एक नये चेहरे बाहर निकल आये। पूरे आधे दर्जन की गिनती थी। कुल एक दर्जन आँखों ने घूर कर जो मेरी ओर देखा तो मैं सिहर उठा। लग रहा था जैसे मैं कोई चिड़ियाघर का जानवर हूँ।

'कौन है री सुरों ! कब की जान-पहचान थी ?' ऊपर के बर्थ से अँगड़ाई लेती हुई बोली।

'मैं क्या जानूँ, नाम तो तुम्हारा ही ले रहा था।' सुरों ने जवाब दिया।

'नाम लेने में क्या हर्ज है बिब्बो बहन, तुम साथ तो उसके चली नहीं जाओगी—क्यों री रज्जो ?'

'भई तुम लोग तो लगी आपस ही में छेड़ छाड़ करने, कुछ मेहमान का तो खयाल रखो।'—रज्जो ने जवाब दिया।

'गिनी, देख तो मुझे गेस्टापो का आदमी-सा लगता है।'

ऊपर के बर्थ से आवाज आई—'नहीं रानी, मुझे तो कृषी लगता है।'

'छतरी छोड़कर खेत से भागा होगा।'

'किस गाँव में उतरे थे बच्चू ?'—कहती हुई रानी नीचे उतर आई।

'चेहरे से मनहूसियत टपकती है। मुझे तो पाकिस्तानी मालूम होता है।'

'अरी मुर्रो देखना, खाकसार तो नहीं है। तुम्हारी ही तरफ देखता हुआ लबरा पढ़ रहा है—जरा बचना।'

'मुआ मेरा क्या बिगाड़ेगा—जरा समझो न बिब्बो बीबी इनसे।'

बिब्बो बीबी ने अपना चश्मा निकाला, शीशे को साफ किया, नाक पर ठीक करते हुए बोली—'हूँ तो आप हैं?'

'जी'—मैंने जवाब देना चुप रहने से बेहतर समझा।

'तो आप ही के लिए गाड़ी रुकी थी।'

'जी!'

'आप कौन देश के वासी हैं?'

'काशी के।'

'ओह—तो आपका दर्शन करके हम सब स्वर्ग जाँयगी।'

'जी हाँ, लखनऊ तक मैं भी साथ दूँगा।'

'आप साथ देंगे,—कदापि नहीं। आपको बीच में ही छोड़ना पड़ेगा। हाँ यह तो बताइये कि आप रांड़ साँड़ सीढ़ी संन्यासी में से कौन-सी किस्म की चीज हैं।'

'जो भी समझ लीजिये। वैसे काशी में आपको और भी बहुत से मिलेंगे।'

'अरे दीदी सँभलना, बनारसी है!'—मुर्रो ने सँभाला। बिब्बो बीबी साड़ी की शिकन ठीक करके बोलीं—

'हाँ यह कौन-सा स्टेशन था?'

'कोई गुमनाम?'

'जरा देखिये तो।'

'अँधेरे में देखने की आदत नहीं। आप चश्मा दें तो कुछ कोशिश करूँ!'

मेरी बात से चिढ़कर खिब्बो बीबी खुद उठी पर इतने में गाड़ी चल दी। अँधेरे में इधर-उधर देखा, कहीं कुछ दिखाई नहीं दिया। झुँझला-कर बैठ गयी। थोड़ी देर शांति रही—फिर सामूहिक हमले की आशंका हुई। मैं अपने ट्रंक-बिस्तर पर अच्छी तरह जमकर बैठ गया। आँखें पास ही बैठी लड़की की ओर, जो सबों में खूबसूरत और शर्मीली दिखाई दी, बिना किसी प्रयास के खिंच गयीं।

'गिनी, बचना'—रानी ने जुमला कसा। बेचारी गिनी शर्म से रंग गई। मैं गिनी की ओर झुका—

'एक बात मैं भी पूछूँ?'

'जी शौक से।'—गिनी ने आँखें उठाकर कहा।

'आप किस शहर की रौनक वृद्धि करती हैं?'

'मुआ गाली देता है—इसकी शादी कहाँ हुई है।'—रानी ने छेड़-खानी की।

'माफ कीजियेगा, मैंने शौहर नहीं शहर कहा था।'

'अक्ल होती तो पूछने की जरूरत न होती, मगर पूछा ही है तो लो सुन लो। हम लोगों का वतन लखनऊ है।'—इस बार कल्लो ने जुबान काटते हुए कहा।

'तो इधर कहीं बारात-बारात में गई थीं?'

'अजीब अहमक से पाला है। अजी हमारे यहाँ की औरतें बारात नहीं करतीं।'

'मेरा मतलब शादी।'

'हम लोगों की उम्र कोई शादी करने की है?'—रज्जो ने हाथ बँटाया।

'तो क्या उम्र होगी आपकी?'

'देखो मुए की गुस्ताखी!'—रज्जो ने अपने स्वर का चौंका मुँह के बर ऐसा किया।

'तो आपकी इस मंडली का क्या—है?'

'मकसद ?'

'जी हाँ !'

इतने में कहीं से सिर पर फुटबाल आ गिरा। मैं गिरते-गिरते बचा। दिमाग एक साथ दो चक्कर खा गया—आँखें भर आईं।

'चोट तो नहीं आई—मैंने जरा मजाक किया था।'

—देखा रानीकी शरारत थी।

'शुक्रिया, मैंने भी मजाक ही समझा था।'

'और नहीं तो क्या मैं तुम्हारे कुम्हड़े से सर का निशाना लगा रही थी !'

'जी नहीं गोल में पेनल्टी लगा रही थीं।'

'तुम्हारा सर गोल नहीं है क्या ?'

'अभी तो गोल है, मगर आपके इस फुटबाल ने दुबारा मुहब्बत की।'

'पूरे बैसाखी हो, फुटबाल वालीबाल में फर्क भी नहीं जानते।'

'जी तो यह वालीबाल था तभी सर गोलसे चौकोर बनकर ही रह गया—भुरता नहीं हुआ। तो यह वालीबाल टीम है।

'जी'—कट्टो ने अपने दांतों के सेट का प्रदर्शन किया।

'मैं खुश हुआ। तो यह वालीबाल आप हाथ से खेलती होंगी।'

'जी नहीं पैर से।'

'एक पैर से !'

'जी नहीं दोनों से।'

'तो गहरे पानी में खेलती होंगी ?'

'नहीं हवा में।'

'उड़ने लगीं !'

'आप बड़े मुँहफट मालूम होते हैं !'

'आपकी यह वालीबाल टीम....।'

'आपकी घरवाली....।'

'जी।'

'आपकी घरवाली बालीबाल खेलती हैं।'

'जी नहीं, मेरी घरवाली बाल से नहीं खेलती। बाल से मर्द खेला करते हैं।'

'तो औरतें किससे खेलती हैं।'

'दिल से।'

'आप तो बड़े पुरमजाक जान पड़ते हैं।'

'आपकी बातें मीठी लग रही हैं।'

'आप जरूरत से ज्यादा बढ़े जा रहे हैं'—बीच ही में बिब्बो बीबी बमगोलेकी तरह आ गिरी।

'जी नहीं, मैं तो अपनी जगह पर हूँ।'

''मैं कहती हूँ।'

'मैं चुप हूँ....।'

'मैं कहती हूँ अगले स्टेशन पर आपको पुलिस के हाथ दे सकती हूँ।'

अचानक पारे का इतना ऊपर चढ़ जाना किसी को भी पसन्द नहीं आया। मुझे भी अच्छा न लगा। फिर भी मैंने मुस्करा दिया। आग में घी पड़ गया।

'आप जानते हैं कितना बड़ा जुर्म कर रहे हैं।'

'जी, एक हुस्न की मलिका से बातें कर रहा हूँ।' कमरा हँसी से गूँज उठा। मैं चुप हो रहा।

'अच्छा बनारस उतरकर बताऊँगी।'

'तो क्या आपको बनारस उतरना है?'

'हाँ—क्यों?'

मैं मुस्कराया—

'बनारस तो बहुत पीछे छूट गया।'

'सच'?—सब एक साथ फुक पड़ीं।'

'हे परमात्मा ! यह तो बड़ा बुरा हुआ !' इनकी बेबसी और झुँझलाहट के मजे ले रहा था।

—'आज का प्रोग्राम बदलना होगा।'

—'मेरे लिये रोज इन्तजार कर रही थी।'

—'मुझे सारनाथ देखना था।'

—'मुझे अपने जीजाजी से मिलना था।'

'कहिये तो चेन खींचकर गाड़ी रोक दूँ।' मैंने साहस किया।

'यह आप दूसरा जुर्म करेंगे।'

'अच्छा, मेरा पहला जुर्म तो सुना दीजिये।'

'आपका जुर्म !'

'जी।'

'बहुत संगीन है।'

'फिर भी।'

'आप रात के वक्त जनाने डब्बे में सफर कर रहे हैं।'

'क्या कहा।'—मुझे विश्वास नहीं हुआ। बाहर झाँककर देखा तो सचमुच दरवाजे के पास एक जनानी तसवीर रोशन हो रही थी। मुझे अपनी बेबसी पर रोना आ रहा था और मेरे साथ की लड़कियाँ अट्टहास कर रही थीं।

जनानी सरकार



होली को सुबह सोकर उठा तो श्रीमतीजी ने हाथों में प्रातःकालीन अख़बार देकर मुख्य समाचार की ओर संकेत किया। समाचार पढ़ते ही मैं चौंक पड़ा। मोटे मोटे अक्षरों में लिखा था।

महिला सरकार की स्थापना

राजधानी में शांतिपूर्ण क्रांति

सभी पुरुष अधिकारी बन्दी

मैंने श्रीमतीजी का मुँह देखा तो वह मुस्करा रही थीं। जैसे षड़यन्त्र में उनका भी हाथ हो।

'कहिये आपके साथ कैसा व्यवहार किया जाय?' श्रीमतीजी ने प्रश्न किया।

'क्या मतलब?'

'बिना ची चपड़ के आप हमारी सरकार को मान्य करेंगे या जेल जाने का इरादा है?'

'मेरी सरकार तुम्हारा हुक्म सर आँखों पर।'

'अच्छा तो उठिये बाजार से जाकर साग भाजी लाइये। आज डबल त्योहार है'

उठना पड़ा। मुँह-हाथ धोकर चाय पी। झोला लेकर बाहर निकला। सड़क पर जो आया तो देखता हूँ नगर की काया पलट हो गयी है। चौराहे पर खड़ा कान्सटेबल साड़ी पहने नजर आया। नजदीक से देखा तो मालूम हुआ कि कोई महिला-मूर्ति है। जनानी सरकार पुरुष पुलिस पर कैसे विश्वास कर सकती थी! रातों-रात सरकार बदल गयी, सेना बदल गयी, पुलिस बदल गयी। वाह री नारी शक्ति! मेरा अनुभव गलत निकला।

'जनाब सब्ज़ी का रास्ता किधर को गया है?'—मैंने कांस्टेबल से पूछा।

'तुम तो यहीं का आदमी मालूम पड़ता है मुझसे मजाक करता है। चलो थाने पर।' सब्जी के पैसे में से दुअन्नी देकर मैंने पीछा छुड़ाया।

'अच्छा फिर किसी कांस्टेबल से छेड़खानी मत करना समझे।'

मैंने देखा कांस्टेबलनी साहिबा कार को दिशा संकेत करते समय ऐसी लग रही थीं जैसे कोई नर्तकी कथाकली की भाव-भंगिमा का प्रदर्शन कर रही हो।

चौराहे से सब्ज़ी की ओर मुड़ा। वहाँ का दृश्य देखा तो मालूम हुआ कि जनानी सरकार की स्थापना का समाचार वहाँ पहुँच चुका है। सब्ज़ी से सभी पुरुष विक्रेता गायब थे। खटकिनों और कुंजड़िनों का रामराज्य था। फलस्वरूप मुँहमागे दामों पर सौदा खरीदना पड़ा। मोल-भाव, चूँ-चपड किये बिना ही मैं झोला भर बाहर आया। सोच रहा था कि यह सफल क्रांति की योजना किसी महिला मस्तिष्क की नहीं हो सकती, इसके पीछे जरूर पुरुष-शक्ति का हाथ है जो महिलाओं को मूर्ख बना रही है।

चौराहे पर जुलूस मिल गया। "जनानी सरकार जिन्दाबाद" "पुरुषों का शोषण खत्म हुआ" घर-घर में नारा शुरू हुआ।" और

पुरुषों का क्या होगा ?

यही प्रश्न घर आकर जब मैंने श्रीमतीजी से किया तो बोलीं—घरों में नौकरों का अभाव हो चला है। आप लोग घरकी व्यवस्था कुछ दिन देखिये।

'और ये शहर के दफ्तर, मिल कारखानें कैसे चलेंगे ?'

'हमलोग देख लेंगी, चिंता न करें।'

'खेती भी करेंगी ?'

'करेंगी नहीं, करायेंगी।'

'और रिकशा ?'

'स्त्रियाँ पुरुषों की गाड़ी खींचना अपना अपमान समझती हैं—यह काम पुरुषों से ही कराया जायगा।'

'आपकी सेना में पुरुष भी रहेंगे या केवल महिलाएँ ?'

'जी नहीं, सेना-पुलिस में पुरुषों का विश्वास नहीं किया जा सकता।'

इतने में घड़ी ने नौ बजाये। श्रीमतीजी ने झट रेडियो खोल दिया—दिल्ली के लाल किले पर भारत की सर्व प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित झंडा फहरा रही हैं। महिलाओं का अपार जनसमूह उमड़ा चला आ रहा है। आज महिलाओं का मुक्ति-पर्व है। विश्व की महिलाएँ भारत की ओर आशाभरी दृष्टि से देख रही हैं।'

श्रीमतीजी ने भाषण खतम होते ही ताली पीटी। मुझे भी साथ देना। पड़ा थोड़ी देर बाद भारत के प्रथम महिला मन्त्रिमंडल की स्थापना हुई और सदस्यों के नाम घोषित किये गये। नयी जनानी सरकार में निम्नलिखित सदस्य थे।

इन्दिरा गांधी (प्रधान मन्त्रिणी), पद्मजा नायडू (गृहमन्त्रिणी), सुशीला नायर, (स्वास्थ्य मन्त्रिणी,), मृदुला साराभाई (व्यापार),

अरुणा आसफ अली (शिक्षा), हमीदा बानू (श्रम), कृष्णाहठी सिंह (रक्षा), हंसा मेहता (वित्त), लीलावती मुंशी (खाद्य), महारानी जयपुर (डाक तार) महारानी ग्वालियर (रेल), मधुबाला (कला) ।

कप्तान लक्ष्मी भारतीय सेना की प्रधान सेनापति बनायी गयीं। चन्द्रलेखा और नयनतारा अमेरिका और इंग्लैण्ड की राजदूती घोषित की गयीं। रीता पण्डित को चीन भेजा जा रहा था पर उन्हें स्थान पसन्द नहीं आया इसलिए अस्वीकार कर दिया। राजकुमारी अमृतकौर सरकार में सम्मिलित तो नहीं हुईं पर राष्ट्रसंघ में भारत का मुख्य प्रतिनिधि बनने को राजी हो गयीं। कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने समाजवादी महिलादल और श्रीमती सुचेता कृपालानी ने डेमाक्राटिक फ्रंट नामक विरोधीदलों की स्थापना की। पुरुषों से संघर्ष के समय सभी दल आपस का मतभेद भुलाकर एक हो जायँगे। सर्वदलीय सरकार बनाने का प्रयत्न असफल रहने पर जनानी सरकार के प्रथम मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की घोषणा कर दी गयी।

'यह आल इण्डिया रेडियो है, अब कुसुम सयानी से समाचार सुनिये।'

'बड़ी प्यारी आवाज है। रेडियो से पुरुषों को सबसे पहले निकाल बाहर करना चाहिये।'

'चुप रहो'—श्रीमतीजी ने मुझे डाँटा कहा—'समाचार सुनो'।

'स्वतन्त्र भारत की प्रथम महिला सरकार ने अपनी प्रथम बैठक में निश्चय किया है कि पुरुषों द्वारा बनाया गया विधान सरकार को मान्य नहीं है।

नया विधान महिलाएँ बनायेंगी। इसके लिए देशभर में महिला विधान-विशेषज्ञों की खोज की जा रही है।

सरकार ने निश्चय किया है कि प्रचार के सभी साधनों पर सरकार का नियन्त्रण रहे; इसलिए रेडियो, सिनेमा और समाचार पत्रों पर

सरकारी नियन्त्रण रहेगा। सरकार अच्छी तरह जानती है कि पुरुषों ने इन साधनों का दुरुपयोग किया है। पत्र-पत्रिकाओं और सिनेमाचित्रों में नारी का जो भ्रष्ट रूप अंकित किया गया है इसके लिए एक ट्रिब्यूनल की स्थापना की गयी है जो अपराधी लेखकों और डाइरेक्टरों को उचित दण्ड देगा। समाचारपत्र विद्रोह फैला सकते हैं; इसीलिए इनका पुरुषों के हाथों में रहना ठीक नहीं। योग्य महिलाओं को देश के प्रमुख पत्रों का संचालन हस्तांतरित कर दिया गया है।

पुरुष शक्ति का उपयोग राष्ट्रहित में किया जायगा। देश में खाद्य संकट है। अच्छी नस्ल के पशुओं का अभाव है। पुरुषों का उचित उपयोग किया जाना चाहिये। कोई व्यक्ति राष्ट्रसेवा से इनकार नहीं कर सकता। बेकारों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की जायगी।

महिला सरकार को पुरुषों की हड़ताल, सत्याग्रह की बिलकुल परवाह नहीं है। महिला सरकार पुरुषों का विद्रोह, आंदोलन दबाने में पूर्ण समर्थ है। देश में कोई भी पुरुष बेकार नहीं बैठने पायेगा, हड़ताल नहीं कर सकेगा, महिलाओं के विरुद्ध सरकार के प्रति अश्रद्धा नहीं प्रकट कर सकेगा। इसके लिए प्रांतों को विशेष आदेश भेजे गये हैं। समाचार समाप्त हुए। जय दुर्गा!

रेडियो समाचार की समाप्ति पर श्रीमतीजी ने कत्थक की एक मुद्रा का प्रदर्शन कर साइकिल से बाहर चली गयी और मैं रसोई घर में घुसा। वाह री किस्मत! होली के दिन और रसोई। जनानी सरकार जिन्दाबाद!

समाप्त